# अध्याय - 3

# हिन्दी फिल्मों में चित्रित 'गे' – संघर्ष एवं समस्याएँ

## अध्याय-3

# हिन्दी फिल्मों में चित्रित 'गे' - संघर्ष एवं समस्याएँ

हिन्दी फिल्म, जिसे अक्सर समाज का दर्पण कहा जाता है, समाज के विभिन्न पक्षों को उजागर करने का माध्यम रहा है। यह माध्यम लंबे समय तक एल जी बी टी क्यू+ समुदाय, विशेषकर 'गे' व्यक्तियों के जीवन, संघर्ष और उनकी समस्याओं को या तो अनदेखा करता रहा या गलत तरीके से प्रस्तुत करता रहा। भारतीय समाज में 'गे' पहचान को लेकर वर्षों से गहरी सामाजिक और सांस्कृतिक वर्जनाएँ रही हैं, और इसका प्रभाव हिन्दी फिल्मों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। जहाँ 20वीं सदी की अधिकांश फिल्मों ने 'गे' पात्रों को हास्य, नकारात्मकता, या हाशिए पर रखकर चित्रित किया, वहीं 21वीं सदी में बदलाव की लहर उड़ने लगा। सामाजिक जागरूकता में वृद्धि और धारा 377 के खात्मे जैसे ऐतिहासिक न्यायिक निर्णयों ने सिनेमा को समलैंगिकता की कहानियों को अधिक संवेदनशील और वास्तविक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया। इन परिवर्तनों ने फिल्मों में समलैंगिकता के चित्रण को एक नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का मार्ग प्रशस्त किया।

## 3.1 गे शब्द: उद्भव एवं विकास : एक झाँकी

'गे' (Gay) शब्द का मूल अर्थ है 'खुश', 'स्वतंत्र', और 'रंगीन'। यह शब्द 12वीं शताब्दी में अंग्रेज़ी भाषा में आया, जो फ्रेंच शब्द 'Gai' और लैटिन 'Gaius' से प्रभावित था। पहले पहल इस शब्द का उपयोग 'आनंद' और 'स्वतंत्रता' को व्यक्त करने के लिए किया जाता था। 'गे' शब्द के आरंभिक उपयोग पर भाषाविद डगलस हार्पर लिखते हैं, "Gay initially denoted carefree or joyful, unburdened by societal expectations or constraints."[1] 14वीं से 17वीं शताब्दी के बीच 'गे' शब्द ने अपने मूल अर्थ 'खुश और स्वतंत्र' से हटकर नैतिक और सांस्कृतिक संदर्भों में एक नया रूप लेना शुरू किया। इस समय 'Gay House' शब्द का

उपयोग वेश्यालय को संदर्भित करने के लिए किया गया, जो न केवल एक स्थान बल्कि ऐसी जीवनशैली का प्रतीक था जो समाज की पारंपरिक नैतिक सीमाओं से परे थे। इसी प्रकार, 'Gay Man' शब्द उन पुरुषों के लिए प्रयुक्त होने लगा, जो सामान्य सामाजिक जिम्मेदारियों, जैसे विवाह और पारिवारिक संरचना, से मुक्त होकर एक स्वच्छंद और स्वतंत्र जीवन जीते थे। शेक्सपियर के समय में 'गे' शब्द का उल्लेख साहित्य और नाटकों में 'gay attire' या 'gay spirit' के रूप में मिलता है, जो आनंदमय और नैतिक प्रतिबंधों से मुक्त व्यक्तित्व को दर्शाता था। 15वीं और 16वीं शताब्दी में, 'गे' का उपयोग उन लोगों के लिए किया जाने लगा, जो विलासिता और आनंद की खोज में रहते थे, चाहे वह समाज द्वारा अनैतिक ही क्यों न माना जाता हो। इस प्रकार, यह शब्द धीरे-धीरे आनंद और अनैतिकता का पर्याय बन गया।

20वीं शताब्दी के मध्य तक 'गे' शब्द ने एक और परिवर्तन किया और यह समलैंगिक पुरुषों की लैंगिक पहचान को संदर्भित करके आगे बढ़ा । 1960 के दशक तक यह शब्द "an expression of homosexual identity and cultural pride[2]" के रूप में स्थापित हो चुका था । इसके इस्तेमाल ने 'समलैंगिक' (Homosexual) शब्द से जुड़े नकारात्मक धारणाओं को चुनौती दी। समलैंगिक समुदाय के संदर्भ में 'गे' शब्द के महत्व को ब्रिटिश लेखक 'पीटर टाटचेल' ने इन शब्दों में परिभाषित किया है: "Gay is not just an identity but a cultural expression that challenges the traditional norms of gender and sexuality[3]."

1960 और 70 के दशक के दौरान, 'गे' शब्द ने एल जी बी टी अधिकार आंदोलन में एक प्रतीकात्मक भूमिका निभाई। यह न केवल समलैंगिक समुदाय की लैंगिक पहचान थी बल्कि उनकी स्वतंत्रता और सामाजिक स्वीकृति की मांग का प्रतीक बना। साहित्य और सिनेमा में भी यह शब्द व्यापक रूप से उपयोग किया जाने लगा। जैसा कि अमेरिकी समलैंगिक अधिकार कार्यकर्ता हार्वे मिल्क ने कहा था, "Gay means love, freedom, and the right to live without fear or shame"[4]. पारंपरिक समाज और धर्म ने 'गे' शब्द और इससे जुड़ी

पहचान को लंबे समय तक दबाने का प्रयास किया । समलैंगिकता को "अप्राकृतिक" और "पापपूर्ण" करार दिया गया । इस संदर्भ में धार्मिक सिद्धांतों के प्रभाव पर इतिहासकार माइकल ब्राउन लिखते हैं, "The notion of homosexuality as unnatural stems not from biology, but from religious dogmas deeply rooted in patriarchal ideologies."[5] । 20वीं शताब्दी के मध्य से समलैंगिकता के प्रति वैश्विक दृष्टिकोण में धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा । 1967 में ब्रिटेन में 'Sexual Offences Act' के तहत समलैंगिकता को वैध घोषित किया गया । इसके बाद साहित्य, कला, और संस्कृति में समलैंगिकता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हुआ ।

भारतीय संदर्भ में पुरुष समलैंगिकता का इतिहास लंबा और जटिल रहा है । सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक दबावों के बावजूद क्वीर समुदाय ने अपने अधिकारों और पहचान के लिए संघर्ष जारी रखा है । 2018 में धारा 377 का उन्मूलन एक बड़ा कदम था, लेकिन भारतीय समाज में समलैंगिकता की पूरी स्वीकृति अभी भी एक दूरगामी लक्ष्य है ।

## 3.2 'गे' पर आधारित हिन्दी फिल्म की सूची

समलैंगिकता पर आधारित हिन्दी फिल्में और उनकी कहानियाँ, भारतीय सिनेमा में एक महत्वपूर्ण पहलू के रूप में उभरी है । मुख्यतः प्यार, रिश्ते, उनके ज़िदगी पर घटित समस्या एवं विषमताओं को अनावरण करने का श्रेय है । एक-एक पात्र व अनकी कहानी या विषयों के माध्यम से, सामाजिक मानदंडों को चुनौती देना, रूढ़ियों को तोड़ना, समाज में इन्हें निश्चित स्थान दिलवाना यही फिल्मों के मुख्य उद्देश्य रहे हैं । जीवनभर सामाजिक, मानसिक, धार्मिक, आर्थिक, शारीरिक शोषण उनुभव करने वाले लोगों की समस्याओं को समाज के सामने रखने में हिन्दी फिल्में एक हद तक सफल हुए है ।

### 3.2.1 बदनाम बस्ती (1971)

'बदनाम बस्ती' 1971 में प्रेम कपूर द्वारा निर्देशित, भारतीय सिनेमा की पहली क्वीर फिल्म के रूप में मानी जाती है। यह फिल्म प्रसिद्ध साहित्यकार कमलेश्वर प्रसाद सक्सेना के उपन्यास 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' पर आधारित है और समलैंगिक संबंधों की जटिलताओं को उजागर करती है। द्वितीय विश्व युद्ध और भारत की आजादी के बाद की पृष्ठभूमि पर आधारित यह फिल्म सामाजिक वर्जनाओं, व्यक्तिगत पहचान, और प्रेम के अदृश्य बंधनों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करती है।

फिल्म की कहानी सरनाम और बांसुरी के भावनात्मक और जटिल संबंधों के इर्द-गिर्द घूमती है। सरनाम, जो एक सशस्त्र डकैत है, एक हमले के दौरान बांसुरी को डाकुओं के अत्याचार से बचाता है। इस घटना के बाद, बांसुरी सरनाम के प्रति गहरी कृतज्ञता और अनजाने आकर्षण महसूस करती है। जब अदालत में सरनाम के खिलाफ गवाही देने की बारी आती है, तो बांसुरी अपनी भावनाओं के कारण उसकी पहचान उजागर करने से इनकार कर देती है। यह घटना उनके बीच एक मौन जुड़ाव को जन्म देती है। इस बढ़ते लगाव से बचने के लिए सरनाम बांसुरी से दूर चला जाता है।

वर्षों बाद, दोनों की राहें फिर से नौटंकी के एक मंच पर टकराती हैं। बांसुरी अब एक सफल मंच कलाकार बन चुका है। पुरानी भावनाएँ फिर से जाग उठती हैं और उनके बीच रोमांटिक रिश्ता फिर से पनपने लगता है। लेकिन सरनाम को अवैध शराब रखने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया जाता है। जब वह जेल से छूटकर लौटता है, तो उसे पता चलता है कि बांसुरी अब कहीं गायब हो चुका है। यह परिस्थिति सरनाम के जीवन में एक गहरे संघर्ष और अनिश्चितता का नया अध्याय खोलती है।

सरनाम के जीवन में तब एक और महत्वपूर्ण मोड़ आता है, जब वह शिवराज नाम के एक युवा अनाथ ब्राह्मण को अपने साथ रखता है। शिवराज, जो अपने परिवार को खो चुका

है, सरनाम में अपने जीवन का सहारा और अपनापन महसूस करता है। उनके बीच एक अनकहा और गहरा संबंध बनता है, जो प्रेम और मानवेय संवेदनाओं की सीमाओं को परे ले जाता है। यह रिश्ता समाज के रूढ़िवादी ढाँचों और परिभाषाओं को चुनौती देता है। लेकिन इस संबंध की भावनात्मक जटिलता सरनाम के जीवन को और उलझा देती है, क्योंकि वह अभी भी बांसुरी के प्रति अपनी अधूरी भावनाओं से मुक्त नहीं हो पाया है।

कहानी का अंतिम चरण तब आता है, जब बांसुरी दोबारा सरनाम के जीवन में लौटती है। लेकिन इस बार वह सरनाम की योजनाओं में बाधा डालने और शिवराज से उसे दूर करने की कोशिश करती है। बांसुरी का यह हस्तक्षेप सरनाम के जीवन में नए संकट खड़े करता है। इन तमाम भावनात्मक उतार-चढ़ाव और जटिलताओं के बीच, सरनाम अंततः अपनी जिम्मेदारियों को स्वीकार करता है। बांसुरी के साथ फिर से नई जिंदगी की शुरुआत करता है।

'बदनाम बस्ती' महज एक प्रेम कहानी नहीं है; यह फिल्म समाज द्वारा थोपे गए लैंगिक और भावनात्मक सीमाओं की जटिलताओं को बारीकी से परखती है। समलैंगिकता जैसे संवेदनशील विषय पर उस युग में चर्चा आरंभ करना, जब यह विषय पूरी तरह से वर्जित था, अपने आप में एक साहसिक पहल थी।

### 3.2.2 माई ब्रदर ईस निखिल (2005)

'माई ब्रदर ईस निखिल' ओनिर द्वारा निर्देशित, एड्स कार्यकर्ता डोमिनिक डिसूजा की सच्ची घटनाओं से प्रेरित फिल्म है। यह 1987 से 1994 तक के समय को दर्शाती है, जब भारत में एड्स के बारे में जागरूकता लगभग नहीं थी। फिल्म नायक निखिल कपूर (संजय सूरी) के जीवन और उसके एचआईवी पॉजिटिव होने के बाद उसके संघर्षों को संवेदनशीलता के साथ पेश करती है। गोवा की पृष्ठभूमि में बनी इस कहानी में निखिल के व्यक्तिगत, सामाजिक और कानूनी लड़ाई के साथ-साथ उसके परिवार, दोस्तों और प्रेमी निगेल (पूरब कोहली) के समर्थन को दर्शाया गया है।

फिल्म, निखिल और उसकी बहन अनामिका (जूही चावला) के बीच के गहरे भावनात्मक जुड़ाव से शुरू होती है । निखिल के पिता नवीन कपूर (विक्टर बनर्जी) उससे बड़ी उम्मीदें रखते हैं और चाहते हैं कि वह तैराकी चैंपियन बने । अपने पिता की उम्मीदों और अपनी सच्ची पहचान के बीच निखिल लगातार संघर्ष करता है । जब निखिल को एचआईवी पॉजिटिव होने का पता चलता है, तो समाज और यहां तक कि उसके माता-पिता भी उसे हाशिए पर धकेल देते हैं । उसे तैराकी क्लब और अपने घर से बाहर निकाल दिया जाता है, और पुलिस उसे गिरफ्तार कर सेनेटोरियम में डाल देते है । अनामिका और निगेल उसकी रिहाई के लिए कानूनी लड़ाई लड़ते हैं, धमकियों का सामना करते हैं, और अंततः उसे बाहर निकालने में सफल होते हैं । रिहाई के बाद, निखिल संगीत शिक्षक बनता है और अपने सपने पूरा करता है । ढाई साल की लंबी लड़ाई के बाद वह एचआईवी के कारण अपनी जान गंवा देता है । निखिल की मृत्यु के बाद, उसके माता-पिता निगेल को अपना बेटा स्वीकार करते हैं, और अनामिका एक आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी महिला बन जाती है । यह फिल्म संवेदनशीलता के साथ समलैंगिकता, एचआईवी, और परिवार में स्वीकृति जैसे मुद्दों को उजागर करती है । 'माय ब्रदर निखिल' एक ऐसी कहानी है, जो प्यार, समर्थन, और मानवता के महत्व को रेखांकित करती है, साथ ही सामाजिक वर्जनाओं और पूर्वाग्रहों के खिलाफ लड़ाई का प्रतीक बनती है ।

### 3.2.3 हनीमून ट्रैवल्स प्राइवट लिमिटेड (2007)

रीमा कागती द्वारा निर्देशित 'हनीमून ट्रैवल्स ' छह जोड़ों की हनीमून यात्रा के माध्यम से रिश्तों के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती है। यह फिल्म शादी और समाज में छिपे जटिल मुद्दों को सामने लाने का प्रयास करती है फिल्म में दिखाए गए पात्र केवल अपने-अपने निजी संघर्षों से जूझते हुए ही नहीं, बल्कि समाज में स्वीकृति और पहचान की भी तलाश करते हैं।

प्रस्तुत फिल्म की कहानी छह नव विवाहित जोड़ों के पारिवारिक, भावनात्मक और सामाजिक मुद्दों को दर्शाते हुए विभिन्न कहानियां के रूप में उभरकर सामने आती हैं । इन्हीं कहानियों में से एक बंटी और विक्की का संबंध है ।

बंटी और विक्की दोनों अपने-अपने जीवन साथियों के साथ हनीमून यात्रा पर हैं। बाहरी तौर पर वे सामान्य शादीशुदा जोड़े लगते हैं, लेकिन धीरे-धीरे उनके व्यक्तित्व और उनके आपसी संबंधों की परतें खुलने लगती हैं । फिल्म ने बड़ी सहजता से यह दिखाने की कोशिश की है कि भारतीय समाज में कई लोग अपने वास्तविक यौन झुकाव को छिपाकर शादी करते हैं, जो बाद में उनके लिए और उनके जीवनसाथी के लिए मुश्किलें खड़ी करता है ।

फिल्म में एक निर्णायक मोड़ तब आता है जब बंटी अपनी पत्नी मधु के सामने अपनी सच्चाई प्रकट करता है । वह मधु को बताता है कि वह विक्की के प्रति आकर्षित है और समलैंगिक है । बंटी इस बात को स्वीकार करता है कि उसने समाज के दबाव में शादी की थी, लेकिन अब वह अपनी असली पहचान से भाग नहीं सकता । मधु के लिए यह सच किसी झटके से कम नहीं थी । वह न केवल असमंजस में पड़ जाती है, बल्कि अपने जीवन के इस अनचाहे मोड़ को स्वीकारने के लिए संघर्ष करती है । यह दृश्य समाज में मौजूद उन सच्चाइयों को उजागर करता है, जहाँ समलैंगिकता को समझने और स्वीकार करने में अब भी कठिनाई होती है । मधु की प्रतिक्रिया उन भारतीय महिलाओं की मानसिकता को दर्शाती है, जो ऐसी स्थिति में खुद को ठगा हुआ महसूस करती हैं । मधु यह समझने का प्रयास करती है कि बंटी ने अपनी असल पहचान को छुपाकर शादी करने का निर्णय क्यों लिया है ।

फिल्म ने बंटी और विक्की के संबंध को विस्तारपूर्वक दिखाने के बजाय सूक्ष्म अभिव्यक्तियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है, यह प्रभावशाली तरीके से इस सच्चाई को

सामने लाती है कि भारतीय समाज में ऐसे रिश्ते भी मौजूद हैं । 'हनीमून ट्रैवल्स' समलैंगिकता पर चर्चा करते हुए यह संदेश देती है कि वास्तविकता से भागने की बजाय उसे स्वीकारना और समझना आवश्यक है । यह फिल्म रिश्तों में सच्चाई और आत्म-स्वीकृति की महत्ता को उजागर करती है और समाज में व्याप्त रूढ़ियों को चुनौती देने की कोशिश करती है ।

**3.2.4 न जाने क्यों (2010)**

'ड्यु नो वाई...न जाने क्यों' भारतीय सिनेमा में एल जी बी टी क्यु आंदोलन पर आधारित एक ऐतिहासिक फिल्म है । संजय शर्मा के निर्देशन में बनी यह फिल्म समाज में समलैंगिक संबंधों से जुड़े कलंक और उनके नतीजों को प्रस्तुत करती है । कपिल शर्मा द्वारा लिखी गई यह कहानी पहली बार ऑन-स्क्रीन समलैंगिक चुंबन दिखाते हुए सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देती है ।

प्रस्तुत फिल्म की कहानी संयुक्त परिवार की संरचना और उसमें छिपे रहस्यों को उजागर करती है । परिवार की मुखिया मार्गरेट डिसूजा हैं, जबकि आर्थिक जिम्मेदारी उनकी बहू रेबेका पर है । रेबेका अपने पति पीटर के जाने के बाद से अकेले ही परिवार को संभाल रही है । वह अमीर पुरुषों के साथ संबंध बनाकर अपने परिवार का भरण-पोषण करती है । पीटर, जो लंबे समय से परिवार से अलग है, कैंसर से पीड़ित होकर अपने अंतिम दिनों में घर लौटता है । उनकी वापसी परिवार में छिपी भावनाओं और जटिल रिश्तों को और अधिक गहराई में ले जाती है ।

रेबेका के तीन बच्चे—एशले, सैम और लिंडा—हर कोई अपने जीवन में अलग-अलग संघर्ष कर रहे हैं। एशले, जो अपनी पत्नी जेनी और बेटी एंजेल के साथ खुशहाल जीवन का दिखावा करता है, वास्तव में वह एक गुप्त समलैंगिक है। जब उसकी मुलाकात आर्यन नाम के एक समलैंगिक व्यक्ति से होती है, तो दोनों के बीच एक मजबूत रिश्ता पनपता है ।

दूसरी ओर, सैम अपनी भाभी जेनी से प्यार करता है, लेकिन अपने दिल की बात कहने में असमर्थ है । इस बीच, जेनी, जो अपने पति की उपेक्षा से आहत है, सैम के करीब आने लगती है। परिवार के भीतर भावनात्मक जटिलताएं तब और बढ़ जाती हैं जब एशले और आर्यन एक-दूसरे के प्रति अपने प्रेम को लेकर संघर्ष करते हैं । एशले अपने परिवार और रिश्ते के बीच फंसा हुआ महसूस करता है । वह अपनी पहचान स्वीकारने में असमर्थ रहता है और सामाजिक दबाव में आकर आर्यन से अलग हो जाता है ।

सात साल बाद की कहानी में, आर्यन, जो अब एक सफल फिल्म स्टार बन चुका है, जेनी से मिलता है । वह उसे एशले की मृत्यु के बारे में बताती है, जो एक कार दुर्घटना में हुई थी । सैम अब शादीशुदा है और दुबई में काम कर रहा है । आर्यन, एशले के कमरे में जाता है, जहां उनकी साझा यादें अब भी मौजूद हैं । यहाँ फिल्म की समाप्ति होती है । यह फिल्म समाज में एल जी बी टी क्यु + समुदाय के संघर्ष, प्रेम और सामाजिक दबाव के बीच उनकी पहचान की लड़ाई को दर्शाती है।

**3.2.5 पंख (2010)**

'पंख' एक गहन विचारोत्तेजक मनोवैज्ञानिक ड्रामा है, जिसका निर्देशन 'सुदीप्तो चट्टोपाध्याय ने किया है। यह फिल्म पहचान, लैंगिक भूमिकाओं और समाज एवं पारिवारिक अपेक्षाओं से उपजने वाले मनोवैज्ञानिक संघर्ष जैसे जटिल विषयों की पड़ताल करती है।

फिल्म के केन्द्र पात्र जेरी "बेबी कुसुम" के नाम से एक बाल कलाकार के रूप में फ़िल्म फ्रेटरनिटी में ख्याति और सफलता प्राप्त की, यहाँ तक कि एक राष्ट्रीय पुरस्कार भी जीता । लेकिन इस सफलता की भारी कीमत चुकानी पड़ी। उसकी माँ मैरी (लिलेट दुबे), जो एक असफल अभिनेत्री थी, ने अपने अधूरे सपनों को पूरा करने के लिए जेरी को एक महिला बाल कलाकार के रूप में अभिनय करने के लिए मजबूर किया,जेरी कभी लड़की के रूप में अभिनय नहीं करना चाहता था, और इस कारण से उसके माता-पिता के बीच अक्सर झगड़े,

बहस और दुर्व्यवहार होते थे । इस विषाक्त माहौल में बड़ा होते हुए, जेरी स्कूल या कॉलेज जाने में असमर्थ था। अकेलापन और अलगाव महसूस करते हुए, उसने धूम्रपान, शराब और कभी-कभी नशे का सहारा लिया, इसे अपनी एकमात्र राहत मानते हुए। उसके सामाजिक संपर्क सीमित थे, सिवाय एक युवा लड़के के जो अक्सर बेबी कुसुम के लिए चाय बनाता और ऑमलेट पकाता था।

जैसे-जैसे जेरी किशोरावस्था में प्रवेश करता है, वह उस समय की एक प्रमुख अभिनेत्री नंदिनी (बिपाशा बसु) के बारे में कल्पना करने लगता है। अपनी कल्पनाओं में, वह उससे बातचीत करता है और अपने वास्तविक अस्तित्व की खोज के संघर्ष में सांत्वना और प्रेरणा प्राप्त करता है। पुरुष अभिनेता बनने की अपनी मर्दाना आकांक्षाओं और महिला कलाकार "बेबी कुसुम" के रूप में अपनी पिछली प्रसिद्धि के बीच फंसा हुआ, जेरी गहरे भ्रम में पड़ जाता है। इस भ्रम से निपटने के लिए, वह नंदिनी जैसी एक काल्पनिक छवि बनाता है, लेकिन अपनी वास्तविक पहचान और अतीत की पहचान के बीच आंतरिक संघर्ष ने उसे खो दिया और अपनी सच्चाई को समझने में असमर्थ बना दिया।

निर्देशक सुदीप्तो चट्टोपाध्याय ने जेरी के मानसिक संघर्षों और पहचान संकट को खूबसूरती से प्रस्तुत किया है, फिल्म का उपयोग करते हुए इस भ्रम के जटिल पहलुओं की खोज की। फिल्म का शीर्षक पंख (विंग्स) जेरी की स्वतंत्रता और आत्म-खोज की लालसा को दर्शाता है, और फिल्म एक ऐसे दृश्य से शुरू होती है जो प्रतीकात्मक रूप से इसके नाम को उचित ठहराती है।

### 3.2.6 मेमरीज़ इन मार्च (2010)

'मार्च की यादें' एक गहन और भावनात्मक फिल्म है, जो प्रेम, आत्म-स्वीकृति और सामाजिक स्वीकृति के जटिल पहलुओं को उजागर करती है। संजय नाग द्वारा निर्देशित यह फिल्म एक माँ की कहानी है, जो अपने बेटे की अप्रत्याशित मृत्यु के बाद उसकी यौनिक

पहचान से परिचित होती है । यह फिल्म क्वीर समुदाय के मुद्दों को न केवल संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती है, बल्कि मानवीय रिश्तों और सामाजिक पूर्वाग्रहों के खिलाफ खड़े होने की प्रेरणा भी देती है।

फिल्म की शुरुआत सिद्धार्थ नाम के एक युवा विज्ञापन पेशेवर की असमय मौत के साथ होती है। एक कार दुर्घटना में कोलकाता में उसकी मृत्यु के बाद, उसकी मां, आरती मिश्रा, दिल्ली से कोलकाता आती है ताकि वह बेटे के सामान को समेट सके और उसके अंतिम संस्कार की जिम्मेदारी निभा सके।

इसी बीच आरती को यह जानकर गहरा झटका लगता है कि सिद्धार्थ एक समलैंगिक था और अपने सहकर्मी और क्रिएटिव डायरेक्टर, अर्नब, के साथ एक गहरे प्रेम संबंध में था। यह खुलासा उसके लिए भावनात्मक रूप से चुनौतीपूर्ण रहा शुरुआत में आरती और अर्नब के बीच असहजता और दूरी होती है, लेकिन धीरे-धीरे संवाद और आपसी समझ से यह दूरी कम होती है।

सिद्धार्थ के जीवन और उसके रिश्तों की झलक पाकर आरती का अपने बेटे के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगता है। उसे सिद्धार्थ की लिखी चिट्ठियों और उसकी चीजों से यह समझ में आता है कि उसका बेटा अपनी सच्चाई के साथ खुश था । अर्नब के साथ बातचीत के दौरान, आरती को एहसास होता है कि सिद्धार्थ का प्रेम सच्चा और गहरा था ।

फिल्म का सबसे भावुक क्षण वह है, जब आरती को अपने बेटे द्वारा अर्नब के लिए लिखा गया एक चिट्ठी मिलता है । उस पत्र में सिद्धार्थ ने अपनी माँ के प्रति सम्मान और अपनी सच्चाई बताने के डर को व्यक्त किया है । वह चाहता था कि उसकी मां उसे स्वीकार करें, लेकिन वह समाज के दबाव और उनके लिए संभावित अपमान को लेकर चिंतित था ।

फिल्म का अंत बेहद मार्मिक और प्रेरणादायक है । आरती, जो पहले अपने बेटे की सच्चाई को स्वीकारने में हिचकिचा रही थी, अंततः न केवल इसे पूरी तरह से स्वीकार करती है, बल्कि अर्नब को अपने परिवार का हिस्सा भी बनाती है । यह बदलाव एक मां के प्रेम और स्वीकृति की ताकत को दर्शाता है । 'मार्च की यादें' केवल क्वीर मुद्दों पर आधारित नहीं है; यह प्रेम, रिश्तों, और परिवार में स्वीकृति की सार्वभौमिकता पर आधारित है । यह फिल्म दिखाती है कि कैसे सामाजिक पूर्वाग्रह और रूढ़िवादी सोच व्यक्तिगत रिश्तों और पहचान को प्रभावित करते हैं, लेकिन समझदारी और स्वीकृति के माध्यम से इन बाधाओं को पार किया जा सकता है। आरती का बदलता दृष्टिकोण और अर्नब के प्रति अपनापन दर्शकों को यह संदेश देता है कि असली बदलाव परिवार से शुरू होता है।

**3.2.7 आई एम 'उमर' (2011)**

ओनिर द्वारा निर्देशित 'आई एम' एक एंथोलॉजी फिल्म है, जिसमें चार अलग-अलग कहानियां शामिल हैं । ये कहानियां व्यक्तिगत संघर्षों, समाज की कठोरता, और आत्म-स्वीकृति की यात्रा को दर्शाती हैं । प्रत्येक कहानी का मुख्य किरदार किसी न किसी सामाजिक मुद्दे से जूझता है, जो उसकी पहचान और उसके अस्तित्व के लिए चुनौती बनता है । इन चार कहानियों में से एक कहानी "उमर" समलैंगिक अधिकारों और समाज में एल जी बी टी क्यु समुदाय के प्रति दमनकारी दृष्टिकोण को उजागर करती है ।

'उमर' कहानी का केंद्र मुंबई में रहने वाले जय और उमर के रिश्ते पर आधारित है। जय, जो एक कर्नाटक से मुंबई आया हुआ समलैंगिक व्यक्ति है, एक क्लब में उमर से मिलता है । दोनों के बीच तुरंत आकर्षण पैदा होता है, और वे जल्द ही एक दूसरे के साथ समय बिताने लगते हैं । यह रिश्ता उनके लिए सहज और रोमांचक है, लेकिन यह समाज की कठोरता और दमनकारी रवैये से अछूता नहीं रहता । उनकी मुलाकात के बाद, एक रात दोनों एकांत में समय बिताने के लिए बाहर निकलते हैं । वे एक सुनसान जगह पर अपनी

गाड़ी में कुछ निजी पल बिताने की कोशिश करते हैं, लेकिन तभी एक पुलिस अधिकारी वहां पहुंचता है। पुलिस उन्हें "अश्लीलता" के आरोप में पकड़ लेता है और उनके साथ दुर्व्यवहार करता है। जय और उमर को सार्वजनिक रूप से अपमानित किया जाता है और उनसे पैसे की मांग की जाती है।

पुलिस द्वारा किया गया यह शोषण न केवल LGBTQ+ समुदाय के प्रति समाज के दोहरे मापदंडों को उजागर करता है, बल्कि यह भी दिखाता है कि कैसे कानून का दुरुपयोग कर इन व्यक्तियों को उनके अधिकारों से वंचित किया जाता है। इस पूरी घटना में जय को भावनात्मक और शारीरिक शोषण का सामना करना पड़ता है, जबकि उमर इस घटना के दौरान भागने में सफल रहता है।

कहानी में एक और अप्रत्याशित मोड़ तब आता है, जब जय को सच्चाई का एहसास होता है कि उमर ने उसे धोखा दिया था। उमर और पुलिस अधिकारी ने मिलकर उसे फंसाने और उससे पैसे ऐंठने की साजिश रची थी। यह सच्चाई जय के लिए भावनात्मक रूप से और भी विनाशकारी साबित होती है।

"उमर" समाज में क्वीर समुदाय के प्रति भेदभाव, शोषण और पूर्वाग्रहों की वास्तविकता को सामने लाती है। यह कहानी यह भी दर्शाती है कि सामाजिक दबाव और स्वीकृति की कमी किस प्रकार कुछ लोगों को गलत राह पर चलने के लिए मजबूर कर सकती है।

### 3.2.8 बॉम्बे टॉकीज ( 2013)

करण जौहर द्वारा निर्देशित 'अजीब दास्तान' भारतीय सिनेमा के सौ वर्षों के सम्मान में बनी 'बॉम्बे टॉकीज' एंथोलॉजी की चार लघु फिल्मों में से एक है। यह कहानी समलैंगिकता, सामाजिक पूर्वाग्रह और व्यक्तिगत संघर्षों को गहराई से चित्रित करती है।

करण जौहर, जो पहले 'दोस्ताना' में समलैंगिकता को हल्के-फुल्के अंदाज में प्रस्तुत कर चुके थे, इस फिल्म में एक गंभीर और यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हैं।

कहानी का केंद्र अविनाश (साकिब सलीम) है, जो एक युवा समलैंगिक है। अपने पिता के साथ तीखी बहस के बाद, जब वह उसकी पहचान को लेकर ताना मारते हैं, अविनाश अपना घर छोड़ देता है। वह एक नई नौकरी शुरू करता है और गायत्री (रानी मुखर्जी) के अधीन काम करता है, जो एक आत्मविश्वासी और खुले विचारों वाली महिला है। गायत्री उसे अपने जन्मदिन के रात्रिभोज पर आमंत्रित करती है, जहां वह गायत्री के पति (रणदीप हुड्डा) से मिलता है।

रात्रिभोज के दौरान, देव और अविनाश के बीच पुराने हिंदी गानों के प्रति साझा रुचि के कारण एक जुड़ाव बनता है। यह जुड़ाव देव के भीतर एक अनकही खींच को जन्म देता है। देव अपनी भावनाओं को अपनाने में संकोच करता है, क्योंकि वह खुद को सामाजिक और पारिवारिक जिम्मेदारियों के बंधनों में फंसा हुआ पाता है। जब अविनाश देव की झिझक और खुद से छुपे हुए संघर्ष को पहचानता है। वह देव को अपनी सच्चाई स्वीकारने के लिए प्रेरित करता है।

गायत्री, जो अपने पति के बदलते व्यवहार को नोटिस करती है, इस सच्चाई का सामना करती है कि उनकी शादी झूठ पर आधारित थी। वह देव से साफ-साफ कहती है कि उनका रिश्ता खत्म हो चुका है। वह यह भी स्वीकार करती है कि अब वह खुद को स्वतंत्र महसूस करती है, क्योंकि उसने सच को स्वीकार लिया है।

फिल्म का अंत देव, जो अपनी पहचान के साथ संघर्ष कर रहा था, और इस झूठी जिंदगी से बाहर निकलने का प्रयास करता है। गायत्री, जो इस पूरी स्थिति से आहत है, अंततः अपने जीवन में एक नई शुरुआत की ओर बढ़ती है।

प्रस्तुत फिल्म समलैंगिकता के प्रति समाज के दृष्टिकोण, व्यक्तिगत संघर्ष, और आत्म-स्वीकृति की जटिलता को उजागर करती है। यह फिल्म दिखाती है कि कैसे समाज की रूढ़िवादी सोच और पूर्वाग्रह न केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बाधित करते हैं, बल्कि रिश्तों को भी जटिल बना देते हैं।

**3.2.9 अलीगढ़ (2015)**

'अलीगढ़', हंसल मेहता द्वारा निर्देशित, एक सशक्त और मार्मिक फिल्म है जो भारतीय समाज में एल जी बी टी क्यु समुदाय के साथ होने वाले भेदभाव और असहिष्णुता को उजागर करती है । यह फिल्म 2010 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के मराठी साहित्य के प्रोफेसर, डॉ. श्रीनिवास रामचंद्र सिरस की वास्तविक घटनाओं पर आधारित है ।

फिल्म की शुरुआत प्रोफेसर सिरस के एकांतप्रिय और शांत जीवन से होती है । डॉ. सिरस एक मराठी कवि हैं, जिन्हें अपनी लेखनी, पुरानी हिंदी गानों और अपनी निजी दुनिया में शांति मिलती है । लेकिन यह शांतिपूर्ण जीवन उस समय बिखर जाता है, जब उनके घर में कुछ पत्रकार और स्थानीय लोग जबरन घुसते हैं और उनकी निजी जिंदगी का वीडियो रिकॉर्ड करते हैं । वीडियो में उन्हें एक रिक्शा चालक के साथ अंतरंग स्थिति में दिखाया जाता है ।

इस वीडियो के सार्वजनिक होने पर, विश्वविद्यालय प्रशासन उन्हें तुरंत निलंबित कर देता है । यह घटना न केवल उनकी निजता का उल्लंघन है, बल्कि उनकी यौनिकता को अपराध के रूप में प्रस्तुत करती है । सिरस उनके सहकर्मियों, पड़ोसियों और समाज द्वारा बहिष्कृत किया जाता है ।

फिल्म में दूसरा महत्वपूर्ण किरदार दीपु सेबेस्टियन है, जो एक युवा और उत्साही पत्रकार है । दीपु को यह महसूस होता है कि सिरस का मामला केवल एक व्यक्ति का नहीं,

बल्कि एल जी बी टी क्यु समुदाय के अधिकारों और निजता के सम्मान की व्यापक लड़ाई है। दीपु, सिरस के साथ बातचीत करता है और उनके दर्द और अकेलेपन को समझने की कोशिश करता है। इस दौरान, सिरस अपनी वेदना व्यक्त करते हैं कि कैसे समाज ने उनकी निजता छीन ली और उन्हें उनकी सच्चाई के लिए दंडित किया। कहानी में भावनात्मक गहराई तब आती है, जब सिरस यह कहते हैं कि "उनका जीवन बहुत छोटा और साधारण था, लेकिन उसमें उनकी आज़ादी थी। अब वह भी उनसे छीन ली गई है"। यह संवाद न केवल क्वीर समुदाय की चुनौतियों को उजागर करता है, बल्कि समाज के उन पूर्वाग्रहों पर भी सवाल उठाता है जो किसी की निजी जिंदगी को सार्वजनिक रूप से शर्मिंदगी का कारण बनाते हैं।

फिल्म के अंत में, अदालत सिरस के पक्ष में फैसला सुनाती है और उन्हें विश्वविद्यालय में बहाल करने का आदेश देती है। और यह जीत केवल आधी ही साबित होती है, क्योंकि कुछ ही दिनों बाद सिरस अपने घर में मृत पाए जाते हैं। उनकी मृत्यु को आत्महत्या के रूप में रिपोर्ट किया जाता है, लेकिन परिस्थितियां सवाल खड़े करती हैं।

प्रस्तुत फिल्म एक व्यक्ति की कहानी से कहीं बढ़कर लाखों एल जी बी टी क्यु + लोगों की आवाज है, जो अपनी पहचान और अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यह फिल्म भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक और रूढ़िवादी मानसिकता पर तीखा प्रहार करती है और इस विचार को बढ़ावा देती है कि प्रेम और यौनिकता किसी का अपराध नहीं हो सकती। मनोज बाजपेयी ने डॉ. सिरस के किरदार को गहराई और ईमानदारी से निभाया है। उनके अभिनय ने दर्शकों को सिरस के अकेलेपन, दर्द और आत्म-सम्मान को महसूस करने का मौका दिया। 'अलीगढ़' एक गहन सामाजिक संदेश देती है कि हर व्यक्ति को अपनी सच्चाई के साथ जीने का अधिकार है और समाज को इसे स्वीकार करने की दिशा में बढ़ना चाहिए।

### 3.2.10 टैम आउट (2015)

'टैम आउट' एक गहरी और मार्मिक फिल्म है, जो किशोरावस्था की उलझनों, आत्म-खोज की प्रक्रिया, और पारिवारिक बंधनों की जटिलताओं को सजीव रूप से प्रस्तुत करती है । कहानी 14 वर्षीय देव के दृष्टिकोण से गढ़ी गई है, जिसका जीवन दोस्तों के साथ मस्ती, नए अनुभवों और छोटी-मोटी परेशानियों से भरा है । लेकिन यह सहज जीवन उस समय बदल जाता है, जब उसे अपने बड़े भाई वरुण की समलैंगिकता के बारे में पता चलता है।

देव के लिए यह सच्चाई न केवल चौंकाने वाली होती है, बल्कि उसकी सोच और भावनाओं को भी झकझोर देती है। वह अपने भाई को हमेशा एक आदर्श और प्रेरणा के रूप में देखता था, लेकिन वरुण की सच्चाई उसे भ्रमित और असहज कर देती है। किशोरावस्था के उस नाजुक दौर में, जब हर चीज को समाज की स्वीकृति के पैमाने पर परखा जाता है, देव के लिए यह स्वीकार करना मुश्किल हो जाता है। वह वरुण से दूर हो जाता है और खुद को परिवार और दोस्तों से अलग-थलग महसूस करने लगता है।

वरुण, जो अपनी पहचान को स्वीकारने के लिए पहले ही संघर्ष कर रहा है, अपने छोटे भाई की प्रतिक्रिया से आहत होता है। लेकिन वह अपनी सच्चाई पर कायम रहता है। इस बीच, देव अपने भीतर उठते सवालों और सामाजिक मान्यताओं के साथ जूझता है। वरुण के साहस और आत्म-स्वीकृति को देखकर देव धीरे-धीरे उसे समझने की कोशिश करता है। यह प्रक्रिया न केवल देव को वरुण के करीब लाती है, बल्कि उसे अपने भाई की सच्चाई का सम्मान करना भी सिखाती है।

### 3.2.11 कपूर एंड सन्स (2016)

शकुन बत्रा द्वारा निर्देशित 'कपूर एंड सन्स' पारिवारिक रिश्तों की जटिलताओं और समलैंगिकता को सामान्य बनाने का एक खूबसूरत प्रयास है। यह कहानी राहुल कपूर के

इर्द-गिर्द घूमती है, जो अपनी लैंगिकता को आत्मविश्वास और गरिमा के साथ स्वीकार करने वाला व्यक्ति है।

राहुल अपने परिवार का 'परफेक्ट बेटा' है—जिम्मेदार, आदर्श, और हर किसी की प्रशंसा का पात्र । लेकिन उसकी समलैंगिकता का खुलासा परिवार के भीतर एक बड़ा बदलाव लाता है। उसकी मां, जो उसे हमेशा से "परफेक्ट बेटा" मानती थी, इस सच को स्वीकारने में कठिनाई महसूस करती है। फिल्म दिखाती है कि राहुल की लैंगिकता उसकी परिपक्वता, नैतिकता, और उसके चरित्र को प्रभावित नहीं करती। इसके बजाय, यह उसका एक ऐसा हिस्सा है, जिसे समझने और स्वीकारने की आवश्यकता है।

फिल्म में हर पात्र अपनी निजी चुनौतियों से जूझता है। राहुल का भाई अर्जुन एक संघर्षरत लेखक है, जो अपने बड़े भाई की परछाई से बाहर निकलने की कोशिश कर रहा है। उनके माता-पिता अपने रिश्ते में खटास और असुरक्षा से जूझ रहे हैं, जबकि उनके दादा अपनी अंतहीन इच्छाओं और मस्तमौला स्वभाव के साथ परिवार को एकजुट रखने का प्रयास करते हैं।

राहुल का चरित्र फिल्म में सबसे स्थिर और संतुलित है। जबकि अन्य पात्र अपनी भावनात्मक अस्थिरताओं और संघर्षों से लड़ रहे हैं, राहुल अपनी पहचान को पूरी ईमानदारी और आत्मविश्वास के साथ स्वीकार करता है। उसका जीवन यह संदेश देता है कि किसी की लैंगिकता उसकी पहचान का एक हिस्सा हो सकती है, लेकिन यह उसके व्यक्तित्व को परिभाषित नहीं करती।

यह कहानी प्रेम, स्वीकृति, और सच्चाई का संदेश देती है। यह दर्शकों को यह सोचने पर मजबूर करती है कि स्वीकृति और समझ किसी भी रिश्ते को मजबूत बनाने की कुंजी है, जबकि पूर्वाग्रह केवल बंधन और दूरी पैदा करते हैं। फिल्म एक नई दृष्टि प्रस्तुत करती है कि रिश्तों और पहचान को सामाजिक मानदंडों से परे देखना चाहिए।

### 3.2.12 शुभ मंगल ज्यादा सावधान (2020)

हितेश केवल्या द्वारा निर्देशित 'शुभ मंगल ज्यादा सावधान' समलैंगिकता को मुख्यधारा में सहजता और गरिमा के साथ प्रस्तुत करने वाली एक अनूठी फिल्म है। यह कहानी कार्तिक और अमन के प्रेम संबंध पर आधारित है, जो समाज और परिवार की सीमाओं को चुनौती देकर अपने रिश्ते को स्वीकारने का साहस दिखाते हैं। हास्य और व्यंग्य के माध्यम से, फिल्म ने गंभीर विषयों को सरल और प्रभावी तरीके से दर्शकों तक पहुंचाया है।

फिल्म की कहानी अमन के पारंपरिक परिवार के इर्द-गिर्द घूमती है, जो सामाजिक मानकों और पारिवारिक सम्मान को सर्वोपरि मानता है। जब अमन और प्रमी कार्तिक का रिश्ता परिवार के सामने आता है, तो यह उनके लिए एक असामान्य और अस्वीकार्य स्थिति बन जाती है। अमन के माता-पिता इसे एक समस्या मानते हैं, जिसे "ठीक" किया जा सकता है। यह घटनाक्रम इस बात को उजागर करता है कि समाज में लैंगिकता से जुड़े मुद्दों को किस प्रकार एक अनचाहा बोझ या कलंक माना जाता है।

फिल्म में कई घटनाएं परिवार की संकीर्ण सोच और मान्यताओं के कारण उत्पन्न होने वाले भावनात्मक संघर्षों को उजागर करती हैं। अमन और कार्तिक के बीच का प्रेम उनके परिवार के पारंपरिक दृष्टिकोण को चुनौती देता है। एक दृश्य जिसमें वे सार्वजनिक रूप से अपने रिश्ते को व्यक्त करते हैं, यह संदेश देता है कि समलैंगिकता कोई असामान्य बात नहीं है। परिवार के दृष्टिकोण और उनकी पुरानी धारणाएं उनके बच्चों की पहचान और भावनाओं को गहराई से प्रभावित करती हैं।

फिल्म का केंद्रीय विषय अमन और कार्तिक के प्रेम और उनके आत्म-सम्मान के लिए लड़ाई पर आधारित है। कार्तिक रिश्ते के लिए मजबूती से खड़ा रहता है, जबकि अमन अपने परिवार को यह समझाने का प्रयास करता है कि उसकी पहचान और प्यार परिवार के

सम्मान के लिए किसी भी प्रकार की चुनौती नहीं है। अंत में, फिल्म एक सकारात्मक मोड़ पर समाप्त होती है, जब अमन और कार्तिक अपने रिश्ते को सार्वजनिक रूप से स्वीकार करते हैं। उनका साहस इस बात का प्रतीक है कि जैसे विषमलैंगिक रिश्ते सामान्य माने जाते हैं, वैसे ही समलैंगिक रिश्तों को भी समाज में समान स्वीकृति मिलनी चाहिए।

**3.2.13 बधाई दो (2022)**

हर्षवर्धन कुलकर्णी द्वारा निर्देशित 'बधाई दो' एल जी बी टी क्यु + समुदाय के संघर्षों और समाज की पारंपरिक धारणाओं के टकराव को गहराई से प्रस्तुत करती है। फिल्म की कहानी शार्दुल और सुमन के इर्द-गिर्द घूमती है, जो अपनी लैंगिक पहचान को छुपाने के लिए एक "लैंवडर विवाह" करने का निर्णय लेते हैं । शार्दुल एक पुलिस अधिकारी है, जो अपनी समलैंगिक पहचान के साथ समाज की उम्मीदों और दबावों के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करता है । वहीं, सुमन अपनी प्रेमिका रिमझिम के साथ एक स्वतंत्र जीवन जीने की कोशिश कर रहा है ।

शादी के बाद, शार्दुल और सुमन अपने-अपने सच को छुपाने की कोशिश करते हैं, लेकिन साथ ही उनके जीवन में हास्य और भावनात्मक जटिलताएं भी उभरती हैं । दोनों एक-दूसरे का सहारा बनते हैं और यह समझने लगते हैं कि उनका रिश्ता उनके व्यक्तिगत संघर्षों को भी साझा करता है । कहानी तब दूसरे मोड लेती है, जब शार्दुल और सुमन अपने परिवारों के सामने अपनी सच्चाई स्वीकारने का साहस दिखाते हैं। यह क्षण व्यक्तिगत स्वतंत्रता और पारिवारिक अपेक्षाओं के बीच संतुलन बनाने की प्रक्रिया को खूबसूरती से दर्शाता है । दोनों यह स्पष्ट करते हैं कि उनकी पहचान और भावनाएं किसी पाप या शर्म का कारण नहीं हैं । फिल्म का अंत प्रेरणादायक है, जहां यह दिखाया गया है कि परिवार की स्वीकृति से समाज में बदलाव की शुरुआत हो सकती है। शार्दुल और सुमन का साहस और उनके रिश्ते की सच्चाई दर्शाती है कि प्रेम और स्वीकृति हर बाधा को पार कर सकते हैं ।

यह फिल्म प्रेम, आत्म-सम्मान, और सच्चाई का जश्न मनाती है और यह संदेश देती है कि हर बदलाव परिवार से ही शुरू होता है।

### 3.3 गे मुद्दे पर बनी हिन्दी फिल्में- सामाजिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर

समाज की परिस्थितियाँ जीवन के विभिन्न पक्षों को प्रभावित करती हैं, जैसे कि परिवार, विवाह, और जातिगत या लैंगिक संबंध । ये संरचनाएँ समय के साथ सामाजिक बदलावों के अनुरूप विकसित होती रहती हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में संस्कृति, जीवनशैली, और मूल्यों में बड़े स्तर पर परिवर्तन देखने को मिले, जो आधुनिक युग में भी जारी हैं । समाज में सुधार और बदलाव एक सतत प्रक्रिया है, जो सामाजिक ढाँचे और उसके प्रकार्यों को नई दिशा प्रदान करती है । जैसा कि श्री के. डेवीस का कथन है, "सामाजिक परिवर्तन से हम केवल उन्हीं परिवर्तनों को समझते हैं जो सामाजिक संगठन, अर्थात् समाज के ढाँचे और प्रकार्यों में घटित होते हैं"[6]। इस परिप्रेक्ष्य में, हिंदी सिनेमा ने समलैंगिक समुदाय से जुड़े मुद्दों को उजागर करने का काम किया है । 'गे' विषय पर आधारित फिल्में उन पहलुओं पर प्रकाश डालती हैं, जिन्हें पहले वर्जित माना गया था । इन फिल्मों ने आत्म-पहचान, सामाजिक अस्वीकृति, और परिवार के जटिल समीकरणों जैसे विषयों को गंभीरता से उठाया है । ये कहानियाँ न केवल जागरूकता बढ़ाने का माध्यम बनीं, बल्कि उन्होंने समाज को समावेशिता और समानता की दिशा में सोचने के लिए भी प्रेरित किया ।

#### 3.3.1 सामाजिक मुद्दे

सामाजिक मुद्दों का विश्लेषण समाज की संरचना को समझने और उसमें सुधार लाने के लिए आवश्यक है । असमानता, लैंगिक भेदभाव, और शिक्षा के अभाव जैसे विषय न केवल समाज की प्रगति में बाधा उत्पन्न करते हैं, बल्कि यह मानवाधिकारों के उल्लंघन का भी कारण बनते हैं। एल जी बी टी क्यु + समुदाय के संदर्भ में, विशेष रूप से 'गे' फिल्मों ने

इन मुद्दों को मुख्यधारा में लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। विख्यात लेखक प्रसून जोशी का कहना है कि "सामाजिक मुद्दों को सुलझाने का पहला कदम है उन्हें पहचानना और उन पर चर्चा करना। कला और सिनेमा इस चर्चा को सशक्त और प्रभावी तरीके से आगे बढ़ा सकते हैं।"[7] हिंदी सिनेमा में गे समुदाय को लेकर बनी फिल्मों के माध्यम से उनकी सामाजिक समस्याओं को समझने का प्रयास किया गया है।

### 3.3.1.1 सामाजिक स्वीकृति की समस्या

सामाजिक स्वीकृति की समस्या समाज के ढांचे और मानसिकता से गहराई से जुड़ी हुई है। जब कोई व्यक्ति पारंपरिक सोच से अलग अपनी पहचान स्थापित करता है, तो उसे समाज में स्वीकृति पाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। क्वीर समुदाय, विशेषकर 'गे' व्यक्तियों के संदर्भ में, यह समस्या अधिक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। समाज अक्सर उनके अस्तित्व और पहचान को नकारते हुए भेदभावपूर्ण रवैया अपनाता है, जिससे वे मानसिक और सामाजिक संघर्ष झेलते हैं। जैसा कि मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने कहा है, "स्वीकृति वह पहली सीढ़ी है जो समाज को न्याय और समानता की ओर ले जाती है।[8]" इस मुद्दे को उजागर करने और सामाजिक बदलाव की दिशा में जागरूकता बढ़ाने में सिनेमा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

'बदनाम बस्ती' (1971) से लेकर 'बधाई दो' (2022) तक, इन फिल्मों ने समाज के रूढ़िवादी दृष्टिकोण और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संघर्ष को मार्मिकता और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है।'बदनाम बस्ती' (1971) से लेकर 'बधाई दो' (2022) तक, इन फिल्मों ने समाज के रूढ़िवादी दृष्टिकोण और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संघर्ष को मार्मिकता और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। डॉ. सिरस का सवाल, "मेरी निजता भी अपराध है क्या?[9]"(अलीगढ़), समलैंगिक व्यक्तियों की स्वतंत्रता और निजता पर समाज के हस्तक्षेप को चुनौती देता है। वहीं, 'कपूर एंड सन्स' में राहुल का यह स्वीकारना, "मैं जैसा हूँ, वैसे ही सही

हूँ[10],"यह दर्शाता है कि किसी की लैंगिकता उसकी पहचान का हिस्सा है, जिसे समाज को सामान्य रूप से स्वीकार करना चाहिए।

'पंख' और 'पता नहीं क्यों'जैसी फिल्मों में यह दर्शाया गया है कि समाज के मानकों पर खरा उतरने का दबाव LGBTQ+ व्यक्तियों को अपनी सच्चाई छिपाने के लिए मजबूर करता है। वहीं 'माई ब्रदर... निखिल' और 'मेमोरीज इन मार्च' पारिवारिक अस्वीकृति और सामाजिक बहिष्कार के कारण होने वाले आघात को गहराई से चित्रित करती हैं। 'शुभ मंगल ज्यादा सावधान' और 'बधाई दो' ने हल्के-फुल्के अंदाज में प्रेम और सामाजिक मान्यताओं के बीच की टकराहट को दिखाते हुए यह संदेश दिया कि प्यार को किसी प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं होती। इन फिल्मों के संवाद, जैसे "हमारी शादी से सब खुश होंगे, लेकिन क्या हम भी?[11]" (बधाई दो),या"प्यार को महसूस किया जाता है, फिर इसे गलत कैसे माना जा सकता है?[12]" (पता नहीं क्यों), क्वीर समुदाय के प्रति समाज की असंवेदनशीलता को उजागर करते हैं।

### 3.3.1.2 एच आई वी, एच आई वी पॉजिटिव लोगों के बारे में समाज का दृष्टिकोण

एच आई वी (ह्यूमन इम्यूनोडिफिशिएंसी वायरस) एक ऐसा वायरस है जो प्रतिरक्षा प्रणाली को कमजोर करता है, जिससे व्यक्ति सामान्य संक्रमणों के प्रति भी संवेदनशील हो जाता है। यदि समय पर इसका इलाज न हो, तो यह एड्स (अक्वायर्ड इम्यूनोडिफिशिएंसी सिंड्रोम) का कारण बनता है, जो एचआईवी संक्रमण का अंतिम और गंभीर चरण है। इस बीमारी से पीड़ित व्यक्तियों को समाज में कलंक और भेदभाव का सामना करना पड़ता है। स्वास्थ्य सेवाओं और आर्थिक संसाधनों पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। मानसिक तनाव, सामाजिक अलगाव और भावनात्मक कठिनाइयों के कारण यह समस्या केवल शारीरिक नहीं, बल्कि सामाजिक और मानसिक चुनौती भी है।

"माई ब्रदर... निखिल" (2005) एचआईवी और उससे जुड़े सामाजिक पूर्वाग्रहों को संवेदनशीलता और गहराई से उजागर करती है। यह फिल्म एचआईवी संक्रमित लोगों के प्रति समाज में व्याप्त अस्वीकृति, भय और गलत धारणाओं को चुनौती देती है। निखिल, जो एचआईवी पॉजिटिव और समलैंगिक है, के जीवन में सामाजिक भेदभाव और पारिवारिक अस्वीकृति उस मानसिकता को दर्शाते हैं, जो बीमारी और यौनिकता को कलंक के रूप में दिखता है। फिल्म यह स्पष्ट करती है कि एचआईवी केवल शारीरिक बीमारी नहीं है; यह समाज के भीतर गहरे बैठे पूर्वाग्रहों का प्रतीक है। निखिल के संघर्ष के माध्यम से यह सवाल उठाया जाता है कि क्या एक बीमारी किसी व्यक्ति की पहचान और उसकी मानवीयता को परिभाषित कर सकती है ?

फिल्म में निखिल और निगेल के बीच का रिश्ता सहानुभूति और सच्चे प्रेम का प्रतीक है, जो सामाजिक सीमाओं और कलंक के बावजूद बना रहता है । निखिल और निगेल के बीच हुई मध्य संवाद में निगेल कहता है कि , "कभी मत सोचना कि तुम अकेले हो,"[13] यह संदेश देता है कि बीमारी के बावजूद जीवन में आशा और प्यार संभव है। निर्देशक ओनिर ने करुणा और प्रेम को सामाजिक कलंक और भय के खिलाफ खड़ा करते हुए दिखाया है। यह फिल्म एचआईवी से जुड़ी मिथकों को तोड़ने और जागरूकता फैलाने का एक प्रभावी प्रयास है, जो समाज में बदलाव की आवश्यकता पर बल देती है ।

### 3.3.1.3 सामाजिक बहिष्कार

सामाजिक बहिष्कार पुरुष समलैंगिकता के दंश का सबसे क्रूर रूप है। समाज, जो प्रेम और समानता का आधार होना चाहिए, अक्सर अपनी संकीर्ण सोच और अज्ञानता के कारण समलैंगिक पुरुषों को हाशिए पर धकेल देता है। उनके अस्तित्व को अनैतिक घोषित कर, समाज उन्हें अपने भीतर स्थान देने से इनकार करता है। सार्वजनिक उपहास, अपमानजनक शब्दों, और भेदभावपूर्ण व्यवहार के बीच, उनका जीवन एक अनकही पीड़ा का प्रतीक बन

जाता है। यह बहिष्कार न केवल उनकी आत्मा को छलनी करता है, बल्कि उनके मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को भी गहरे स्तर पर प्रभावित करता है। फिर भी, इस अंधकार के बीच, वे अपने आत्मसम्मान और स्वाभिमान के सहारे, इस बहिष्कार को पराजित करने का प्रयास करते हैं।

भारतीय सिनेमा ने समलैंगिक समुदाय के साथ होने वाले सामाजिक अपवर्जन और भेदभाव को अपनी कहानियों और पात्रों के माध्यम से गहराई से उजागर किया है। ये फिल्में उन अस्वीकृतियों, संघर्षों और मानसिक तनाव को दर्शाता हैं, जिनसे क्वीर समुदाय के व्यक्ति रोजाना गुजरते हैं। फिल्म बदनाम बस्ती के शुरुआती प्रयास ने समाज के द्वारा प्रेम को अपराध मानने की विडंबना को चित्रित किया है, जहाँ संवाद "हमारे प्यार का क्या कसूर है, जो इसे समाज गुनाह मानता है?"[14] यह कथन समाज की मानसिकता को आईना दिखाता है । इसी कड़ी में माई ब्रदर... निखिल (2005) ने निखिल के संघर्षों के माध्यम से बताया कि किस तरह एचआईवी पॉजिटिव और समलैंगिक होने के कारण एक व्यक्ति को समाज और परिवार दोनों से बहिष्कृत होना पड़ता है । "क्या मैं इसलिए बुरा हूँ, क्योंकि मैं अलग हूँ?"[15]— यह बात उस दर्द और अकेलेपन को बयां करता है, जो हर एल जी बी टी क्यु + व्यक्ति झेलता है।

आगे चलकर, 'हनीमून ट्रैवल्स' (2007) और 'पता नहीं क्यों' (2010) ने LGBTQ+ रिश्तों की छिपी हुई मजबूरियों को सामने रखा। बंटी का यह सवाल—"हम जो महसूस करते हैं, क्या उसे कहने का हक भी नहीं?"[16]—समाज के दोहरे मापदंडों पर तीखा प्रहार करता है। वहीं, पंख (2010) LGBTQ+ समुदाय के अकेलेपन और मानसिक संघर्षों को गहराई से व्यक्त करती है। जैरी का संवाद—"क्यों हर किसी की पहचान को समाज तय करता है?"[17]— समानता और स्वीकृति की मांग को स्पष्ट रूप से परिभाषित करता है। मेमोरीज इन मार्च (2011) और ऐ आम (2011) जैसे प्रयास LGBTQ+ अधिकारों के प्रति एक जागरूक समाज की

आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। मेमोरीज इन मार्च का यह संवाद—"अगर मैं उसे नहीं समझ सकी, तो मैं उसकी माँ कैसे?"[18]—परिवार और समाज के बीच की खाई को भरने का आह्वान करता है।

2013 में आई 'बॉम्बे टॉकीज' एल जी बी टी क्यु + के प्रति अस्वीकृति और संघर्ष की मार्मिक कहानी है । राहुल के शब्दों में —"सच बोलने की सजा, क्या हमेशा तिरस्कार ही होती है?"[19]—इस अस्वीकार्यता पर सवाल खड़ा करता है। 'अलीगढ़' (2015) ने डॉ. सिरस के संघर्षों को दिखाते हुए निजता और स्वीकृति के अधिकार पर प्रकाश डाला। उनका यह संवाद—"मेरे घर की दीवारों तक भी समाज का हक क्यों है?"[20]—समाज के अधिकारों और सीमाओं के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता पर जोर देता है। टैम आउट (2015) और कपूर एंड सन्स (2015) ने यह दिखाने का प्रयास किया कि LGBTQ+ संबंधों को समाज में सामान्य बनाने के लिए किस तरह से स्वीकृति का प्रसार करना आवश्यक है। राहुल का यह कथन—"मुझे बदले बिना क्या आप मुझे अपना सकते हैं?"[21]—समानता और स्वीकृति की मूलभूत आवश्यकता को रेखांकित करता है।

'शुभ मंगल ज्यादा सावधान' (2020) और 'बधाई दो' (2022) ने हास्य और संवेदनशीलता के साथ LGBTQ+ समुदाय के अधिकारों और स्वीकृति के मुद्दों को प्रस्तुत किया। कार्तिक का यह सवाल—"हम अपने प्यार के लिए किसी की इजाजत क्यों माँगें?"[22]—प्रेम और पहचान की स्वतंत्रता का प्रतीक बनता है। 'बधाई दो' का यह संवाद—"हमारी शादी से सभी खुश हैं, लेकिन क्या हमारी सच्चाई का भी जश्न मनाया जाएगा?"[23]—लैवेंडर मैरिज की विडंबना और सामाजिक दबाव को दर्शाता है।

इन सभी फिल्मों ने समलैंगिक समुदाय के जीवन के विभिन्न पहलुओं को संवेदनशीलता और गहराई से चित्रित किया है। समाज के पूर्वाग्रहों को दर्शाते हुए, ये फिल्में

उस स्वीकृति और समानता की आवश्यकता को रेखांकित करती हैं, जो हर व्यक्ति का अधिकार है।

### 3.3.1.4 पारिवारिक निष्कासन

पारिवारिक निष्कासन, समलैंगिक पुरुषों के जीवन में एक ऐसी त्रासदी है, जो उनके अस्तित्व की जड़ों को हिला देती है। परिवार, जो प्रेम और संरक्षण का गढ़ माना जाता है, उनकी यौनिकता को समझने में असमर्थ होकर उन्हें नकार देता है। यह निष्कासन उनके जीवन में एक खालीपन और असुरक्षा को जन्म देता है, जिससे वे मानसिक और भावनात्मक संघर्ष के भंवर में फँस जाते हैं। पारिवारिक संबंधों का टूटना, जो उनके आत्मसम्मान और आत्मविश्वास का आधार होता है, उन्हें अपने अस्तित्व की लड़ाई अकेले लड़ने के लिए मजबूर करता है। फिर भी, वे इस निष्कासन के विरुद्ध, अपने भीतर एक नयी शक्ति और स्वाभिमान को जन्म देते हैं, जो उन्हें अपने जीवन का पुनर्निर्माण करने में सक्षम बनाता है ।

हिन्दी फिल्म ने इस मुद्दे को उजागर करने के लिए कई फिल्मों के माध्यम से समलैंगिकता के प्रति समाज और परिवार की अस्वीकृति का सजीव चित्रण किया है । "माय ब्रदर निखिल" (2005) में HIV पॉज़िटिव निखिल को परिवार और समाज द्वारा त्याग दिए जाने का दर्द दिखाया गया है, जिसमें एक मार्मिक संवाद है, "हर कोई चाहता है कि मैं अपने जैसा न रहूँ... लेकिन मैं कैसे बदलूँ, जब यही मैं हूँ?[24]" इसी प्रकार, "अलीगढ़" (2015) में प्रोफेसर सिरस की कहानी उनकी अस्मिता के प्रति समाज की असहिष्णुता को उजागर करती है, जहाँ वह कहते हैं, "हम सब अकेले हैं, लेकिन क्या अकेलापन अपराध है?[25]" "कपूर एंड सन्स" (2016) और "शुभ मंगल ज्यादा सावधान" (2020) ने पारिवारिक निष्कासन को अधिक संवेदनशील और हास्यपूर्ण दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया, जिसमें समलैंगिकता को सामान्य और स्वीकार्य बनाने का प्रयास किया गया । "बधाई दो" (2022) लैवेंडर शादियों के

माध्यम से दिखाती है कि परिवार के दबाव में समलैंगिक पुरुषों को किस प्रकार अपनी पहचान के साथ समझौता करना पड़ता है । इन फिल्मों ने न केवल समलैंगिक समुदाय की पीड़ा को संवेदनशीलता के साथ दिखाया है, बल्कि समाज और परिवार में स्वीकृति और समानता की आवश्यकता पर भी बल दिया है । उनके संवाद और कथानक इस बात पर जोर देते हैं कि अस्वीकृति के बीच, समलैंगिक पुरुष अपने आत्मसम्मान और स्वाभिमान को बनाए रखते हुए अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते हैं।

### 3.3.1.5 समलैंगिकता के प्रति घृणा का चित्रण

समलैंगिकता के प्रति घृणा का चित्रण समाज की संकीर्ण मानसिकता और अज्ञानता का आईना है। यह घृणा, जो धर्म, परंपरा और नैतिकता की आड़ में छिपी होती है, समलैंगिक पुरुषों के लिए मानसिक और भावनात्मक यातना का कारण बनती है। फिल्मों, साहित्य, और अन्य माध्यमों में समलैंगिकता का उपहास या नकारात्मक चित्रण, इस घृणा को और गहरा करता है। यह समाज में पूर्वाग्रहों को न केवल स्थायित्व देता है, बल्कि इसे बढ़ावा भी देता है। ऐसी घृणा का प्रभाव केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक रूप से समलैंगिक समुदाय को कमजोर करता है। इसे समाप्त करने के लिए, एक संवेदनशील और समानतावादी दृष्टिकोण को अपनाना आवश्यक है, जहाँ हर व्यक्ति की पहचान और प्रेम को सम्मान दिया जाए।

भारतीय सिनेमा ने समय-समय पर समलैंगिकता के प्रति समाज में व्याप्त नफरत और भेदभाव को उजागर करने में अहम भूमिका निभाई है। इन फिल्मों ने LGBTQ+ समुदाय के साथ होने वाले तिरस्कार, अस्वीकृति और हिंसा को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। "बदनाम बस्ती" (1971) से "बधाई दो" (2022) तक, कई कहानियाँ उन सामाजिक और व्यक्तिगत संघर्षों को दिखाती हैं, जिनका सामना समलैंगिक व्यक्तियों को करना पड़ता है। "बदनाम बस्ती" में एक पात्र का सवाल, "हमारा प्यार गुनाह क्यों लगता है,

जबकि यह किसी को चोट नहीं पहुँचाता?" [26]समाज की कठोर नैतिकता और पूर्वाग्रह पर गहरी चोट करता है। इसी तरह, "माई ब्रदर निखिल" (2005) में निखिल का दर्द, "मेरे अपने ही मुझसे डरने लगे हैं, जैसे मैं कोई बीमारी हूँ,"[27] क्वीर समुदाय के प्रति समाज की असंवेदनशीलता को उजागर करता है।

"अलीगढ़" (2015) में डॉ. सिरस की व्यथा, "मेरी निजता ही अगर मेरा अपराध बन जाए, तो मैं कहाँ जाऊँ?[28]" समाज की उस सोच को रेखांकित करती है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सम्मान करना नहीं जानती। "कपूर एंड सन्स" (2015) और "शुभ मंगल ज्यादा सावधान" (2020) जैसे सिनेमा में पारिवारिक अस्वीकृति और सामाजिक तिरस्कार के बीच प्रेम और आत्म-स्वीकृति की लड़ाई को सशक्त तरीके से चित्रित किया गया है। "बॉम्बे टॉकीज" (2013) में राहुल का विचार, "हमारी सच्चाई को स्वीकारने से पहले, लोग हमें मिटाने की कोशिश करते हैं[29]," एल जी बी टी क्यु + व्यक्तियों के अस्तित्व के लिए संघर्ष की सच्चाई को बयाँ करता है।

यह सिनेमा प्रेम, स्वीकार्यता, और समानता के महत्व को प्रबल तरीके से प्रस्तुत करता है। इन कहानियों से यह स्पष्ट होता है कि समाज में बदलाव केवल सच्चाई को स्वीकारने और सहिष्णुता अपनाने से ही संभव है।

### 3.3.1.6 लैवेंडर विवाह

लैवेंडर विवाह, पुरुष समलैंगिकता के संदर्भ में, समाज की असहिष्णुता और सामाजिक दबाव का एक मौन विद्रोह है । यह विवाह, एक समझौता है, जहाँ समलैंगिक पुरुष और महिलाएँ अपने अस्तित्व की सच्चाई को छिपाकर समाज की अपेक्षाओं को पूरा करने का प्रयास करते हैं। यह विवाह बाहरी दृष्टि से सामान्य प्रतीत हो सकता है, परंतु इसके भीतर एक गहरी वेदना और आत्मसंघर्ष छिपा होता है। ऐसी शादियाँ न केवल दो व्यक्तियों की भावनात्मक स्वतंत्रता का दमन करती हैं, बल्कि उन्हें जीवनभर एक अधूरी संतुष्टि और

खालीपन का अनुभव कराती हैं। लैवेंडर शादी समाज में समलैंगिकता के प्रति स्वीकृति और समझ की कमी को दर्शाती है। इसे समाप्त करने के लिए, समाज में समलैंगिकता को सहज रूप से स्वीकार करना और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सम्मान करना आवश्यक है।

"बधाई दो" (2022) इस विषय को बड़े ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। फिल्म में मुख्य पात्र, जो एक समलैंगिक पुरुष और महिला हैं, सामाजिक दबाव के चलते एक लैवेंडर शादी का सहारा लेते हैं। हालाँकि, यह शादी उन्हें बाहरी दुनिया से सुरक्षा प्रदान करती है, लेकिन उनके भीतर के खालीपन और स्वतंत्रता की प्यास को मिटा नहीं पाती। फिल्म में राजकुमार राव का विचार, "हम दोनों अपनी-अपनी दुनिया में खुश हैं, तो तुम्हें परेशानी क्यों है?[30]" इस बात को दर्शाता है कि समाज की कठोरता और अस्वीकृति व्यक्तियों को झूठी जिंदगी जीने पर मजबूर करती है। इसी फिल्म में भूमि पेडनेकर का संवाद, "सच्चाई छिपाकर जीने से सुकून नहीं मिलता, बस डर मिलता है,[31]" यह दिखाता है कि लैवेंडर शादियाँ किस प्रकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता का गला घोंटती हैं।

यह विवाह व्यवस्था समाज में समलैंगिकता के प्रति स्वीकृति और समझ की कमी को उजागर करती है। इसे समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि समाज समलैंगिकता को सहजता से स्वीकार करे और हर व्यक्ति को उसकी पहचान के साथ जीने की स्वतंत्रता प्रदान करे। लैवेंडर शादी जैसी वास्तविकताएँ हमें यह सिखाती हैं कि बदलाव का रास्ता केवल सच्चाई को स्वीकारने और समानता का आदर करने से ही संभव है। ये कहानियाँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक बदलाव का एक सशक्त माध्यम हैं, जो प्रेम, स्वीकृति और स्वतंत्रता की दिशा में हमारा मार्गदर्शन करती हैं।

### 3.3.2 मनोवैज्ञानिक मुद्दे

मनोवैज्ञानिक समस्याएँ व्यक्ति के विचारों, भावनाओं तथा संसार को देखने के नज़रिए में अपर्याप्तता के कारण उत्पन्न होती है । दूसरे शब्दों में, मनोवैज्ञानिक मुद्दे

(Psychological issues) वे समस्याएँ या चुनौतियाँ होती हैं जो किसी व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य, भावनात्मक स्थिति, या व्यवहार को प्रभावित करती हैं। ये मुद्दे व्यक्ति की दैनिक जीवन की गुणवत्ता, संबंधों, और सामान्य कल्याण पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं। समलैंगिक पुरुष अपनी यौन पहचान के कारण समाज में विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक दबाव और चुनौतियों से गुजरते हैं। सामाजिक अस्वीकार्यता, पारिवारिक दबाव, और भेदभावपूर्ण व्यवहार उनके मानसिक स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। समाज और परिवार की अस्वीकृति के कारण, वे आत्मसम्मान की कमी, अवसाद और चिंता जैसी जटिल भावनात्मक स्थितियों में उलझ जाते हैं।

### 3.3.2.1 अवसाद

मानसिक विकारों में सर्वाधिक प्रचलित तथा मान्यता प्राप्त विकार अवसाद (depression) है। अवासद में कई प्रकार के नकारात्मक भावदशा और व्यवहार परिवर्तन होते हैं। अवसाद को एक लक्षण या एक विकार कह सकते हैं। भारतीय सिनेमा ने LGBTQ+ समुदाय के मानसिक स्वास्थ्य को संवेदनशीलता और गहराई से प्रस्तुत किया है, विशेषकर अवसाद की उस छाया को, जो सामाजिक अस्वीकृति और पारिवारिक दबावों के कारण उनकी ज़िंदगी पर मंडराती है गे पर आधारित  हिन्दी फिल्मों में उनके आंतरिक संघर्ष और बाहरी दुनिया की नकारात्मकता के बीच जूझते किरदार दिखाए गए हैं, जो गहरे मानसिक आघात का सामना करते हैं। माई ब्रदर... निखिल में निखिल को उसके एचआईवी पॉजिटिव और समलैंगिक होने के कारण परिवार और समाज द्वारा त्याग दिया जाता है, जो उसे गहरे अवसाद की ओर ले जाता है। निखिल का यह प्रश्न, "क्या मैं अब इंसान नहीं हूँ, सिर्फ इसलिए कि मैं अलग हूँ?"[32] यह समाज की कठोरता पर तीखा प्रहार करता है। वहीं, पंख में जैरी का अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष और आत्म-स्वीकृति की चुनौती उसे मानसिक थकावट के कगार पर पहुंचा देती है। जैरी कहती है "क्या खुद को छुपाकर जीना हमारी

नियति है?"[33] LGBTQ+ समुदाय के भीतर छिपी पीड़ा का सार है। मेमोरीज इन मार्च में एक माँ का अपने बेटे की समलैंगिकता को समझने का प्रयास इस बात को रेखांकित करता है कि परिवार का समर्थन न मिलने से व्यक्ति कितना अकेला और असहाय महसूस करता है। इसी तरह, बॉम्बे टॉकीज का राहुल अपने सहकर्मियों और समाज की आलोचना से त्रस्त है, जो उसके मानसिक संतुलन को प्रभावित करती है। डॉ. सिरस की कहानी अलीगढ़ में अकेलेपन और निजी जीवन के उल्लंघन का मार्मिक चित्रण करती है, जहां उनका यह सवाल, "मेरी निजता मेरा अपराध कैसे बन गई?"[34] समाज की असंवेदनशीलता को उजागर करता है।

इन फिल्मों में मानसिक तनाव की तीव्रता और अवसाद के विभिन्न रूपों को ईमानदारी से चित्रित किया गया है। परिवार, समाज और व्यक्तिगत संघर्षों के बीच LGBTQ+ समुदाय के व्यक्तियों को भावनात्मक शांति पाने के लिए अपने आत्म-सम्मान और अस्तित्व की लड़ाई लड़नी पड़ती है। ये कहानियाँ केवल उनके संघर्षों को नहीं दिखातीं, बल्कि इस बात को भी स्पष्ट करती हैं कि सहानुभूति और स्वीकृति मानसिक स्वास्थ्य के लिए कितनी अनिवार्य है।

### 3.3.2.2 मानसिक या शारीरिक उत्पीड़न

उत्पीड़न एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें किसी निर्दोष और निरपराध व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, आर्थिक या भावनात्मक रूप से यातना दी जाती है। इसका उद्देश्य पीड़ित की गरिमा, स्वतंत्रता और आत्मसम्मान को ठेस पहुंचाना होता है। शारीरिक उत्पीड़न इसकी सबसे प्रत्यक्ष और कठोर रूप है। फिल्म अलीगढ़ में डॉ. सिरस और उनके साथी इसी प्रकार के शारीरिक उत्पीड़न का शिकार हुए, जब कुछ लोग बिना अनुमति के उनके घर में घुस आए। इस घटना का वर्णन करते हुए डॉ. सिरस ने बताया, "दो लोग अंदर घुसे, एक के हाथ में कैमरा और दूसरे के हाथ में डंडा था। उन्होंने हम पर हमला किया, खासकर मेरे साथी

को बहुत मारा। मुझे कपड़े पहनने तक का मौका नहीं दिया[35]।" इस प्रकार के हमले न केवल शारीरिक चोट पहुंचाते हैं, बल्कि व्यक्ति की गरिमा और आत्मसम्मान को भी गहरी ठेस पहुंचाते हैं।

शारीरिक उत्पीड़न के साथ-साथ मानसिक उत्पीड़न भी एक गंभीर समस्या है, जिसमें किसी व्यक्ति को भावनात्मक रूप से तोड़ने का प्रयास किया जाता है । डॉ. सिरस को उनके कार्यस्थल में मानसिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ा, जहां उनके निजी जीवन को सार्वजनिक कर उनके खिलाफ माहौल बनाया गया और उन्हें नौकरी से निलंबित कर दिया गया। इस मानसिक उत्पीड़न ने उनके आत्मसम्मान और मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डाला। संस्थागत स्तर पर भी उनके साथ भेदभाव किया गया । विश्वविद्यालय ने उन पर दबाव डाला कि वे अपनी पहचान और सच्चाई को नकारते हुए एक पत्र लिखें, जिसमें उनके कथित कृत्यों को गलत ठहराया जाए । यह मानसिक शोषण का एक स्पष्ट उदाहरण है, जिसमें व्यक्ति को उसकी सच्चाई के खिलाफ खड़ा कर दिया जाता है ।

### 3.3.2.3. समलैंगिक होना 'एक मनोवैज्ञानिक समस्या' है।

समलैंगिकता को एक मनोवैज्ञानिक समस्या के रूप में देखना एक पुरानी और गलत धारणा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने 1973 में समलैंगिकता को मानसिक विकारों की सूची से हटा दिया था । समलैंगिकता एक प्राकृतिक मानव अनुभव है और यह विभिन्न संस्कृतियों और समाजों में मौजूद है । समलैंगिकता को मनोवैज्ञानिक समस्या के रूप में देखना भारतीय समाज में गहरे बैठे पूर्वाग्रहों और रूढ़ियों का प्रतीक है। कई हिंदी फिल्मों ने इस विषय पर प्रकाश डालते हुए समाज की सोच और LGBTQ+ समुदाय के साथ होने वाले भेदभाव को दर्शाया है। 'माई ब्रदर... निखिल' (2005) में निखिल के परिवार द्वारा उसकी समलैंगिकता को स्वीकार न करना यह दिखाता है कि समाज किस तरह यौनिक पहचान को मानसिक विकार समझता है। अलीगढ़ (2015) में डॉ. सिरस के प्रति उनके सहकर्मियों

और समाज की असंवेदनशीलता LGBTQ+ समुदाय को हाशिए पर धकेलने वाली मानसिकता को उजागर करती है।

'बॉम्बे टॉकीज' (2013) और 'शुभ मंगल ज्यादा सावधान' (2020) ने समलैंगिकता को एक सामान्य और प्राकृतिक पहचान के रूप में प्रस्तुत करते हुए समाज की रूढ़िवादी धारणाओं को चुनौती दी। 'बॉम्बे टॉकीज' में समलैंगिकता को एक सच्चाई के रूप में दिखाया गया है, जो समाज के झूठे आदर्शों पर सवाल उठाता है । फिल्म का यह कथन, "हमारी सच्चाई से डरने वाले, खुद के झूठ के साथ कैसे जीते हैं?" [36]प्यार और सच्चाई को सामाजिक पूर्वाग्रहों से ऊपर रखने की बात करता है । वहीं, 'शुभ मंगल ज्यादा सावधान' ने हास्य और संवेदनशीलता के माध्यम से समलैंगिकता को सामान्य जीवन का हिस्सा दिखाया। फिल्म का संवाद, "प्यार प्यार होता है, उसे लड़का-लड़की, लड़का-लड़का, या लड़की-लड़की की परिभाषा में मत बाँधो,"[37] समलैंगिकता के प्रति स्वीकृति और समानता का संदेश देता है। इन फिल्मों ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि प्रेम और पहचान किसी भी सामाजिक नियमों या रूढ़ियों से परे हैं और इन्हें सामान्य रूप में स्वीकार करना ही समाज की प्रगति का प्रतीक है। ये फिल्में समाज की अस्वीकृति के कारण LGBTQ+ समुदाय के आत्म-संघर्ष और उनके मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों को बारीकी से चित्रित करती हैं। इन कहानियों ने यह दिखाया है कि समलैंगिकता को समस्या मानना, दरअसल, समाज की अज्ञानता और संवेदनहीनता का प्रतिबिंब है, जिसे बदलने के लिए स्वीकृति और जागरूकता की आवश्यकता है।

### 3.3.2.4 क्रॉस ड्रेसिंग का सच

पुरुष समलैंगिकता के संदर्भ में क्रॉस ड्रेसिंग (Cross Dressing) केवल एक फैशन स्टेटमेंट या प्रदर्शन नहीं है, बल्कि यह आत्म-अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। क्रॉस ड्रेसिंग के ज़रिए कई समलैंगिक पुरुष अपनी पहचान को खुलकर व्यक्त करते हैं, जो समाज

के पारंपरिक लिंग मानदंडों को चुनौती देता है। यह अक्सर उनके लिए आत्मसम्मान और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रतीक बन जाता है।

'पंख' (2010) क्वीर समुदाय के आत्म-संघर्ष और समाज द्वारा स्वीकृति की कमी के कारण होने वाले मनोवैज्ञानिक दबाव को गहराई से उजागर करती है। फिल्म के मुख्य पात्र जैरी के माध्यम से क्रॉस-ड्रेसिंग को एक गहरे व्यक्तिगत और सामाजिक मुद्दे के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जैरी के लिए, क्रॉस-ड्रेसिंग महज एक परिधान की पसंद नहीं, बल्कि आत्म-अभिव्यक्ति और अपनी पहचान के प्रति एक सशक्त कदम है। यह उसके अस्तित्व और स्वतंत्रता की खोज का प्रतीक है, जिसे समाज "अप्राकृतिक" और "अस्वीकार्य" मानता है। यह स्थिति उसे लगातार सामाजिक तिरस्कार और अस्वीकृति का शिकार बनाती है। जैरी का संघर्ष यह उजागर करता है कि कैसे समाज की कठोर परंपराएँ और रूढ़िवादी सोच किसी व्यक्ति की पहचान को कुचलने की कोशिश करती हैं। जैरी का यह कथन, "कपड़े सिर्फ कपड़े हैं, पर मेरे लिए ये मेरी पहचान हैं,[38]" उसकी गहरी संवेदनाओं और उसकी सच्चाई के प्रति उसके साहस को व्यक्त करता है। फिल्म यह स्पष्ट करती है कि क्रॉस-ड्रेसिंग केवल कपड़े पहनने का तरीका नहीं, बल्कि लैंगिक सीमाओं को चुनौती देने और आत्मा की स्वतंत्रता का प्रतीक है। जैरी का परिवार और समाज उसकी इस अभिव्यक्ति को "अजीब" और "समस्या" के रूप में देखते हैं, जो उसे मानसिक और भावनात्मक रूप से तोड़ने का प्रयास करता है। बावजूद इसके, जैरी अपनी पहचान को अपनाने की कोशिश में डटा रहता है। फिल्म यह सोचने पर मजबूर करती है कि समाज का कर्तव्य लोगों को सीमित करना है या उनकी स्वतंत्रता का सम्मान करना। जैरी का संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि LGBTQ+ समुदाय के व्यापक संघर्ष का प्रतीक है, जो सामाजिक बदलाव और स्वीकृति की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से सामने रखता है।

### 3.3.2.5 मानसिक संघर्ष, शारीरिक संघर्ष और लैंगिक डिस्फोरिया

लैंगिक डिस्फोरिया और मानसिक संघर्ष, समलैंगिक पुरुषों के अनुभव का एक जटिल हिस्सा हैं, जो उनकी आंतरिक पहचान और समाज की कठोर अपेक्षाओं के बीच द्वंद्व पैदा करते हैं। यह असंगति अवसाद, आत्म-संदेह और चिंता को जन्म देती है, जिसे परिवार और समाज की अस्वीकृति और बढ़ा देती है। शारीरिक संघर्ष, जैसे हिंसा, यौन उत्पीड़न और "सुधारात्मक" प्रक्रियाएँ, उनकी पीड़ा को और गहरा करते हैं। "हनीमून ट्रैवल्स प्राइवेट लिमिटेड" (2007) में एक पात्र अपनी यौन पहचान को स्वीकार करने के संघर्ष में यह कहता है, "कभी-कभी, खुद को स्वीकार करना ही सबसे कठिन लड़ाई होती है[39]," जो आत्म-अस्वीकृति और मानसिक दबाव को दर्शाता है। "ऐ आम" (2011) LGBTQ+ समुदाय की पीड़ा को गहराई से प्रस्तुत करते हुए यह दिखाती है कि कैसे सामाजिक तिरस्कार आत्म-संदेह और अवसाद को जन्म देता है। फिल्म का संवाद, "हम अपने सच को जीने से डरते हैं, क्योंकि दुनिया उसे नकारने के लिए तैयार है,[40]" इस संघर्ष की जटिलता को दर्शाता है। वहीं, "बॉम्बे टॉकीज" (2013) में यह विचार, "हमारी सच्चाई से पहले लोग हमें मिटाने की कोशिश करते हैं,[41]" समाज की असहिष्णुता और पूर्वाग्रहों की ओर इशारा करता है। ये फिल्में मानसिक और शारीरिक संघर्षों के साथ-साथ लैंगिक डिस्फोरिया की गहराई को प्रस्तुत करती हैं और यह सवाल उठाती हैं कि क्या समाज क्वीर समुदाय की सच्चाई को स्वीकारने के लिए तैयार है। यह स्पष्ट होता है कि सहानुभूति, जागरूकता और स्वीकृति ही इन संघर्षों को कम करने का एकमात्र रास्ता हैं।

### 3.3.2.6 कमींग आउट

कमींग आउट का अर्थ है अपनी यौन या लैंगिक पहचान को अपने दोस्तों, परिवार, या समाज के सामने स्वीकार करना। यह प्रक्रिया व्यक्ति की पहचान को स्पष्ट करने और उसे स्वीकार करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। "कपूर एंड संस" (2015), "शुभ

मंगल ज्यादा सावधान" (2020) और "बधाई दो" (2022) जैसी फिल्में इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास हैं। ये कहानियां एल जी बी टी क्यु + समुदाय के लोगों के "कमिंग आउट" यानी अपनी पहचान को खुलकर स्वीकारने की प्रक्रिया को परिवार और समाज के साथ उनके रिश्तों के संदर्भ में बेहद संवेदनशील तरीके से प्रस्तुत करती हैं ।

'कपूर एंड संस' में राहुल कपूर का चरित्र समलैंगिकता को परदे पर ईमानदारी से प्रस्तुत करता है, जो अपनी पहचान को लेकर परिवार के साथ स्पष्ट नहीं हो पाता । यह दिखाता है कि भारतीय परिवारों में पारंपरिक अपेक्षाएँ और भावनात्मक दबाव LGBTQ+ व्यक्तियों के लिए इसे स्वीकार करना कितना कठिन बना देते हैं। "शुभ मंगल ज्यादा सावधान" के जरिए अमन और कार्तिक का रिश्ता मुख्यधारा में समलैंगिकता को सहजता से लाने का प्रयास करता है। फिल्म का वह संवाद, "प्यार तो प्यार होता है, फिर चाहे लड़का हो या लड़की[42]," इस बात पर जोर देता है कि प्रेम किसी सामाजिक मानदंड का मोहताज नहीं होता । वहीं, "बधाई दो" में शार्दुल और सुमी की कहानी समलैंगिकता को एक अधिक यथार्थवादी और संवेदनशील तरीके से सामने लाती है । उनके "लैवेंडर विवाह" के जरिए दिखाया गया है कि कैसे सामाजिक दबाव LGBTQ+ व्यक्तियों को झूठे रिश्तों की ओर धकेल सकता है। फिल्म में सुमी का कहना, "झूठ की नींव पर रिश्ते नहीं टिकते[43]," ईमानदारी और स्वीकृति की महत्ता को उजागर करता है। ये फिल्में यह संदेश देती हैं कि प्रेम और पहचान को स्वीकारना हर व्यक्ति का अधिकार है।

### 3.3.3 पितृसत्तात्मक एवं राजनैतिक मुद्दे

पितृसत्ता (Patriarchy) एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें पुरुषों को परिवार, समाज और राज्य के सभी प्रमुख क्षेत्रों में विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं, और महिलाओं, बच्चों, और अन्य हाशिए पर रहने वाले समूहों की भूमिका अक्सर गौण मानी जाती है । यह संरचना सदियों से न केवल महिलाओं के अधिकारों को सीमित करती आई है, बल्कि लैंगिक

समानता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के रास्ते में भी एक बड़ी बाधा बनती रही है। पितृसत्ता की जड़ें गहरी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं में हैं, जो पारंपरिक रूप से शक्ति और नियंत्रण को पुरुषों के हाथ में रखने का काम करती हैं । पितृसत्ता सिर्फ महिलाओं को ही नहीं, बल्कि समलैंगिक समुदाय को भी हाशिए पर धकेलती है । यह व्यवस्था विषमलैंगिकता (Heteronormativity) को सामान्य मानती है और अन्य यौन पहचानों को अस्वीकार करती है ।

राजनैतिक मुद्दे, विशेषकर पुरुष समलैंगिकता के संदर्भ में, समाज के ताने-बाने और उसकी स्वीकृति की जटिलता को प्रतिबिंबित करते हैं। यह केवल अधिकारों की माँग नहीं, बल्कि एक अस्तित्व की लड़ाई है, जहाँ हर व्यक्ति अपनी पहचान के साथ गरिमा से जीने का हकदार है। विवाह, गोद लेने, और रोजगार में भेदभाव जैसे मुद्दे, समलैंगिक पुरुषों के लिए सामाजिक स्वीकृति की कठिन राह को और चुनौतीपूर्ण बना देते हैं। राजनीतिक मंच पर इस विषय की हिचक और असहमति, न केवल संवेदनहीनता को उजागर करती है, बल्कि यह सवाल भी खड़ा करती है कि क्या समानता और न्याय केवल शब्द भर हैं।

### 3.3.3.1 पितृसत्ता और पारिवारिक दबाव

पितृसत्तात्मक समाज में परिवार को 'सम्मान' और 'परंपरा' का केंद्र मानते हुए समलैंगिकता को एक 'अपमानजनक' और 'असामान्य' सत्य के रूप में देखा जाता है । परिवार पर सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने का दबाव, समलैंगिक पुरुषों की पहचान और स्वतंत्रता को कुचलने का काम करता है ।

'शुभ मंगल ज्यादा सावधान' में एक समलैंगिक जोड़े की कहानी है, जिसे हास्य और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है । आयुष्मान खुराना और जितेंद्र कुमार द्वारा निभाए गए पात्र, कार्तिक और अमन, न केवल समाज की पितृसत्तात्मक सोच का सामना

करते हैं, बल्कि अपने परिवारों के दबाव से भी जूझते हैं । फिल्म का संदेश स्पष्ट है कि प्यार और पहचान पर कोई भी समाज अपने नियम नहीं थोप सकता । "प्यार हर किसी के लिए होता है, चाहे वह लड़का हो या लड़की, या फिर दोनों लड़के हों,[44]" जैसे संवादों के जरिए फिल्म यह संदेश देती है कि प्यार और पहचान किसी भी बंधन से परे हैं। फिल्म में परिवार के पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण को गजराज राव द्वारा निभाए गए पिता के किरदार के माध्यम से दिखाया गया है कि, "लोग क्या कहेंगे?"[45] और "हमारी इज्जत का क्या होगा?"[46] इन संवादों के जरिए समाज के तथाकथित 'सम्मान' को व्यक्त करते हैं ।

फिल्म के महत्वपूर्ण दृश्यों में शादी के हॉल में कार्तिक और अमन के बीच का क्षण दर्शकों को प्यार की ताकत और समाज के झूठे आदर्शों पर सवाल उठाने का मौका देता है। इसके अलावा, पिता-पुत्र के बीच टकराव यह दर्शाता है कि पितृसत्तात्मक सोच वाला व्यक्ति अपने बेटे की पहचान को समझने की कोशिश कैसे करता है। जब पिता कहते हैं, "तुम्हारी ये बीमारी नहीं जाएगी![47]" तो कार्तिक का जवाब, "पापा, बीमारी आपकी सोच में है"[48]। इस बात को जोरदार तरीके से प्रस्तुत करता है । फिल्म समाज को यह संदेश देती है कि समलैंगिकता कोई 'बीमारी' या 'विकृति' नहीं है, बल्कि प्यार का एक रूप है, जो सम्मान और स्वीकृति का हकदार है ।

'माई ब्रदर निखिल' एक गहरी और संवेदनशील फिल्म है, जो समलैंगिकता के साथ-साथ एचआईवी/एड्स के प्रति समाज के पूर्वाग्रहों को उजागर करती है। निखिल, जो एक तैराक है, एचआईवी पॉजिटिव होने के बाद समाज द्वारा बहिष्कृत हो जाता है। जब समाज और परिवार के कुछ सदस्य निखिल को छोड़ देते हैं, तब उसकी बहन उसका सबसे बड़ा सहारा बनती है। यह दिखाता है कि परिवार और प्रियजनों का समर्थन किसी भी संघर्ष को कम कर सकता है। "निखिल को ऐसे मत देखो, एक इंसान के रूप में देखो,[49]" इस संवाद के तहत यह सिखाते हैं कि सहानुभूति और मानवाधिकारों के प्रति संवेदनशीलता कितनी महत्वपूर्ण है ।

'टाइम आउट' एक किशोर लड़के की कहानी है, जो अपनी यौन पहचान को लेकर संघर्ष करता है । जब वह अपने भाई के सामने अपनी सच्चाई स्वीकार करता है, तो उसे उपेक्षा और तिरस्कार का सामना करना पड़ता है । यह दिखाता है कि पितृसत्ता का असर केवल बाहरी समाज तक सीमित नहीं है, बल्कि घर की दीवारों के भीतर भी महसूस किया जाता है। "मैं लड़कों की तरफ आकर्षित हूँ[50]," जैसे संवाद और उसके बाद भाई का क्रोधपूर्ण जवाब, "तुमने मुझे और परिवार को शर्मिंदा कर दिया है[51]," एल जी बी टी क्यु व्यक्तियों को पारिवारिक संबंधों में अस्वीकृति और अलगाव का अनुभव कराने की कठोर वास्तविकता को दर्शाता है ।

इसी तरह, 'कपूर एंड संस' में राहुल (फवाद खान) की कहानी पारिवारिक अस्वीकृति की गहराई को सामने लाती है । जब राहुल अपनी समलैंगिकता स्वीकार करता है, तो उसके माता-पिता अपनी पारंपरिक सोच और सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण उसकी सच्चाई को नकारते हैं । "क्या? हमारे परिवार की इज्जत का क्या होगा?[52]" यह संवाद पितृसत्तात्मक सोच की जड़ों को उजागर करते हैं, जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता और पहचान को कुचल देती है । इस अस्वीकृति के कारण परिवार के भीतर तनाव और दूरी पैदा होती है, जो संवेदनशीलता और सहानुभूति के अभाव को दर्शाती है । ये फिल्में दिखाती हैं कि पितृसत्ता न केवल बाहरी समाज में, बल्कि परिवार के भीतर भी समलैंगिक व्यक्तियों के लिए कठिनाइयों और अलगाव का कारण बनती है।

### 3.3.3.2 कानूनी और संस्थागत भेदभाव

कानूनी और संस्थागत भेदभाव एल जी बी टी क्यु + समुदाय के अस्तित्व और गरिमा पर गहरा आघात करता है, जो अपनी पहचान के साथ जीने की कोशिश करते हैं, और इसमें पुलिस द्वारा आक्रमण सबसे कठोर रूप में सामने आता है । सुरक्षा का प्रतीक माने जाने वाले संस्थान, पितृसत्तात्मक मानसिकता और पूर्वाग्रहों से प्रेरित होकर, इन

व्यक्तियों को अपराधी की तरह देखते हैं। उनकी पहचान और स्वतंत्रता को झूठे आरोपों और हिंसा के माध्यम से बाधित किया जाता है।

फिल्म 'ऐ आम' का मुख्य पात्र, ओमर, इसी अन्याय का शिकार बनता है, जब उसे उसकी यौन पहचान के कारण थाने में खींचकर अमानवीय कृत्य सहने पर मजबूर किया जाता है। "तुम जैसे लोग समाज के लिए कलंक हो[53]," जैसे संवाद पुलिस के भीतर गहरी बैठी पूर्वाग्रहपूर्ण मानसिकता को उजागर करते हैं । ओमर की गुहार, "मैंने कुछ भी गलत नहीं किया[54]," न केवल उसकी बेगुनाही को बयां करती है, बल्कि यह भी दिखाती है कि कैसे उसके मानवाधिकारों को बेरहमी से कुचल दिया गया। यह घटना पुलिस की सत्ता के दुरुपयोग और समाज में व्याप्त असमानता की जटिलता को उजागर करती है, जो कानून की आड़ में हो रहे अत्याचारों पर सवाल खड़ा करती है।

### 3.3.3.3. सामाजिक रूढ़ियाँ और धार्मिक विरोध

समलैंगिकता के प्रति समाज में व्याप्त रूढ़िवादी सोच और धार्मिक विरोध LGBTQ+ समुदाय के लिए गंभीर चुनौती है। यह समस्या न केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बाधित करती है, बल्कि समुदाय के सदस्यों को मानसिक, भावनात्मक, और सामाजिक उत्पीड़न का सामना करने पर मजबूर करती है। "हमारे समाज में इस तरह की चीजों की कोई जगह नहीं है[55]" (अलीगढ़, 2015) जैसे संवाद यह दर्शाते हैं कि समाज समलैंगिकता को शर्मिंदगी और अस्वीकृति की नज़र से देखता है।

समलैंगिकता के प्रति यह विरोध मुख्य रूप से पितृसत्तात्मक मानसिकता और धार्मिक दृष्टिकोण से उपजा है । परिवार और समाज इसे अक्सर 'अप्राकृतिक' और 'अनैतिक' ठहराते हैं। "तुमने हमारे परिवार और धर्म को शर्मिंदा कर दिया है[56]" (कपूर एंड संस) जैसे संवाद यह दिखाते हैं कि समलैंगिकता केवल एक व्यक्ति की पहचान नहीं, बल्कि पूरे परिवार और धर्म की प्रतिष्ठा के मुद्दे के रूप में देखी जाती है। धार्मिक विरोध इसे पाप

और सामाजिक कलंक के रूप में प्रस्तुत करता है, जिससे एल जी बी टी क्यु + व्यक्तियों को बहिष्कार, भेदभाव, और उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। ऐसे हालात में धार्मिक और सामाजिक नैतिकता एल जी बी टी क्यु व्यक्तियों की मानसिक और भावनात्मक स्थिरता को गंभीर रूप से प्रभावित करती है।

"प्यार के लिए समाज और धर्म की स्वीकृति क्यों जरूरी है?"[57] (शुभ मंगल ज्यादा सावधान, 2020) जैसे सवाल बार-बार उठते हैं, लेकिन रूढ़िवादी सोच इन्हें नकार देती है। समाज समलैंगिकता को अपराध या गलती के रूप में देखने का नजरिया अपनाता है और इस सोच को बदलने के लिए ठोस कदम उठाने से बचता है। फिल्मों के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि क्वीर समुदाय को समानता और सम्मान तब तक नहीं मिल सकता, जब तक समाज अपनी पुरानी और संकीर्ण सोच से बाहर नहीं निकलता। यह जरूरी है कि समाज प्यार और पहचान को परंपराओं और रूढ़ियों से परे मान्यता दे। यह केवल सिनेमा का संदेश नहीं है, बल्कि एक गहरी मानवीय जरूरत और अधिकार है।

**निष्कर्ष**

हिन्दी सिनेमा में गे पात्रों का चित्रण समय के साथ परिवर्तन के विभिन्न चरणों से गुज़रा है। 1970 और 1980 के दशक में, गे किरदारों को हास्य और तिरस्कार का साधन बनाया गया, जहाँ उनकी पहचान को उपहास और नकारात्मकता से जोड़ा गया। 1990 और 2000 के दशक में यह दृष्टिकोण थोड़ा संवेदनशील हुआ, लेकिन गे किरदार अभी भी साइड भूमिकाओं तक ही सीमित रहे। 2010 के दशक में सिनेमा ने इन पात्रों को मुख्यधारा में लाने का साहसिक कदम उठाया, जहाँ 'माई ब्रदर निखिल' (2005), 'आई एम' (2010), और 'अलीगढ़' (2015) जैसी फिल्मों ने उनके संघर्ष और वास्तविकता को सम्मान दिया। 2020 के बाद, "शुभ मंगल ज्यादा सावधान" (2021) और 'बधाई दो' (2022) ने गे किरदारों को और अधिक स्वीकृति और गरिमा के साथ प्रस्तुत किया। यह सफर अभी अधूरा है, लेकिन हिन्दी

सिनेमा में आए इस बदलाव ने भविष्य में समलैंगिकता के और अधिक सकारात्मक और संवेदनशील चित्रण की आशा को जन्म दिया है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची


1. https://journal.imse.com/qa-with-douglas-harper-creator-of-the-online-etymology-dictionary/
2. Judith Butler's "Gender Trouble: Feminism and the Subversion of Identity" (1990)
3. "An Archive of Hope: Harvey Milk's Speeches and Writings," edited by Jason Edward Black and Charles E. Morris III, published by the University of California Press in 2013.
4. "Can You Be Gay and Christian?: Responding With Love and Truth to Questions About Homosexuality" (2014),
5. Michel Foucault, The History of Sexuality, Pantheon Books,1978, page no 38
6. आर्थिक सुधार औऱ सामाजिक अपवर्जन, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ -5
7. जी एल शर्मा, सामाजिक मुद्दे, रावट प्रकाशन, जयपूर,2015, पृ- 21
8. https://kinginstitute.stanford.edu/king-papers/documents/our-struggle
9. अलीगढ़ ,निर्देशक- हंसल मेहता (2015)
10. कपूर एंड सन्स ,निर्देशक-शकुन बत्रा (2016)
11. बधाई दो, निर्देशक - हर्षवर्धन कुलकर्णी (2022)
12. न जाने क्यों ,निर्देशक-अंजा अहीर (2010)
13. कपूर एंड सन्स ,निर्देशक-शकुन बत्रा (2016)
14. कपूर एंड सन्स ,निर्देशक-शकुन बत्रा (2016)
15. माई ब्रदर निखिल ,निर्देशक- ओनिर (2005)
16. हनीमून ट्रैवल्स ,निर्देशक-रीमा कागती (2007)
17. पंख ,निर्देशक- सुधांशु शर्मा (2010)
18. मेमोरीज इन मार्च ,निर्देशक- संजय नाग (2011)
19. बॉम्बे टॉकीज ,निर्देशक- करण जौहर, (2013)
20. अलीगढ़ ,निर्देशक- हंसल मेहता (2015)
21. कपूर एंड सन्स ,निर्देशक-शकुन बत्रा (2016)

22. शुभ मंगल ज़्यादा सावधान ,निर्देशक-हितेश केवल्या (2020)

23. बधाई दो, निर्देशक - हर्षवर्धन कुलकर्णी (2022)

24. माई ब्रदर निखिल ,निर्देशक- ओनिर (2005)

25. अलीगढ़ ,निर्देशक- हंसल मेहता (2015)

26. बदनाम बस्ती ,निर्देशक- प्रेम कपूर (1971)

27. माई ब्रदर निखिल ,निर्देशक- ओनिर (2005)

28. अलीगढ़ ,निर्देशक- हंसल मेहता (2015)

29. बॉम्बे टॉकीज ,निर्देशक- करण जौहर, (2013)

30. बधाई दो, निर्देशक - हर्षवर्धन कुलकर्णी (2022)

31. बधाई दो, निर्देशक - हर्षवर्धन कुलकर्णी (2022)

32. माई ब्रदर निखिल ,निर्देशक- ओनिर (2005)

33. पंख ,निर्देशक- सुधांशु शर्मा (2010)

34. अलीगढ़ ,निर्देशक- हंसल मेहता (2015)

35. अलीगढ़ ,निर्देशक- हंसल मेहता (2015)

36. बॉम्बे टॉकीज ,निर्देशक- करण जौहर, (2013)

37. शुभ मंगल ज़्यादा सावधान ,निर्देशक-हितेश केवल्या (2020)

38. पंख ,निर्देशक- सुधांशु शर्मा (2010)

39. हनीमून ट्रैवल्स ,निर्देशक-रीमा कागती (2007)

40. आई एम,निर्देशक-ओनिर (2011)

41. बॉम्बे टॉकीज ,निर्देशक- करण जौहर, (2013)

42. शुभ मंगल ज़्यादा सावधान ,निर्देशक-हितेश केवल्या (2020)

43. बधाई दो, निर्देशक - हर्षवर्धन कुलकर्णी (2022)

44. शुभ मंगल ज़्यादा सावधान ,निर्देशक-हितेश केवल्या (2020)

45. शुभ मंगल ज़्यादा सावधान ,निर्देशक-हितेश केवल्या (2020)

46. शुभ मंगल ज़्यादा सावधान ,निर्देशक-हितेश केवल्या (2020)

47. शुभ मंगल ज़्यादा सावधान ,निर्देशक-हितेश केवल्या (2020)

48. शुभ मंगल ज़्यादा सावधान ,निर्देशक-हितेश केवल्या (2020)

49. माई ब्रदर निखिल ,निर्देशक- ओनिर (2005)

50. टाइम आउट ,निर्देशक- राकेश मेहता (2015)

51. टाइम आउट ,निर्देशक- राकेश मेहता (2015)

52. कपूर एंड सन्स ,निर्देशक-शकुन बत्रा (2016)

53. आई एम,निर्देशक-ओनिर (2011)

54. आई एम,निर्देशक-ओनिर (2011)

55. अलीगढ़ ,निर्देशक- हंसल मेहता (2015)

56. कपूर एंड सन्स ,निर्देशक-शकुन बत्रा (2016)

57. शुभ मंगल ज़्यादा सावधान ,निर्देशक-हितेश केवल्या (2020)